जनजातीय क्षेत्रों में पशुपालन

(जनजातीय उपयोजना)

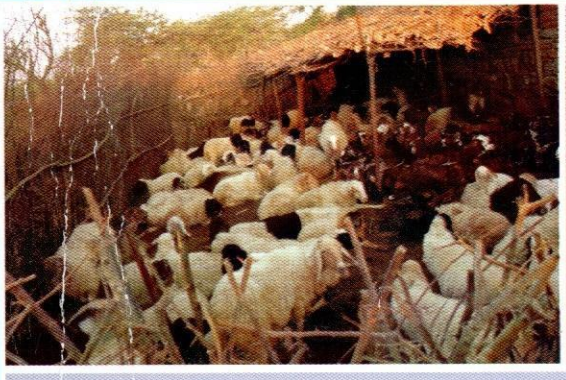
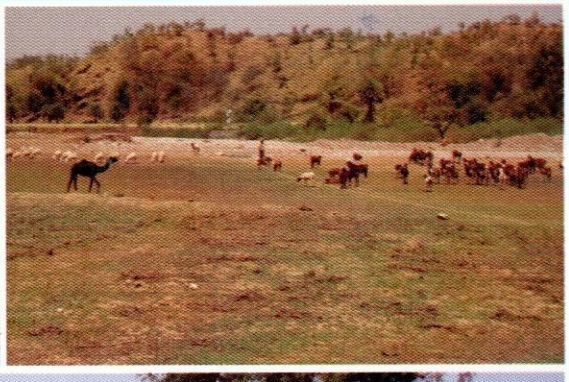
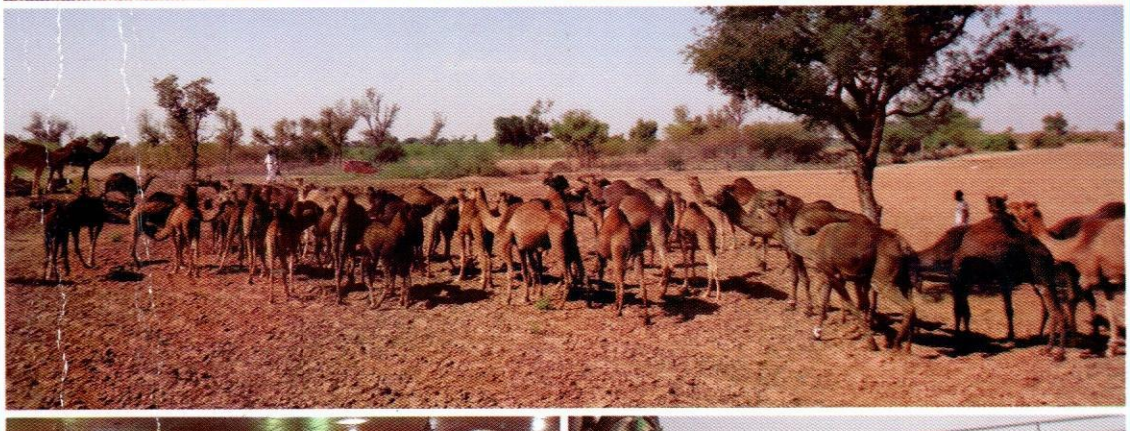
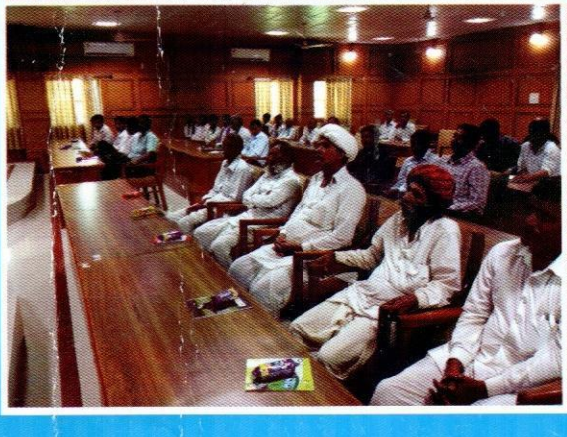
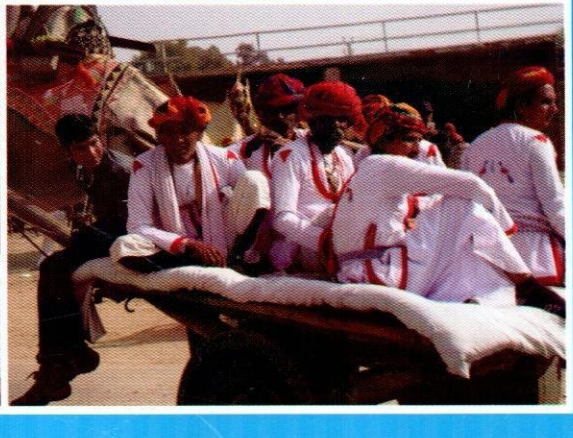

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

जोड़बीड़, बीकानेर-334001, राजस्थान

जनजातीय क्षेत्रों में पशुपालन

(जनजातीय उपयोजना)

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
जोड़बीड़, बीकानेर-334001, राजस्थान

प्रकाशक
डॉ. एन. वी. पाटिल

निदेशक
भा.कृ.अनु.प. –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
पोस्ट बॉक्स 07, जोड़बीड़
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)
फोन : 91–0151–2230183
फैक्स : 91–0151–2970153
ई मेल : nrcccamel@nic.in
वेबसाइट : WWW.nrccamel.icar.gov.in

प्रधान संपादक
डॉ. राकेश रंजन

संपादक मंडल
डॉ. आर. के. सावल
डॉ. सुमंत व्यास
डॉ. फतेह चन्द टुटेजा
श्री नेमीचन्द बारासा
डॉ. राकेश कुमार पूनियां

प्रकाशन वर्ष
मार्च, 2017

मुद्रक
टेक्नोक्रेट प्रिंटर्स
जयपुर

Copyright ©2017, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

निदेशक की कलम से...

ऊँट रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्वपूण घटक है। अपनी अनूठी जैव–भौतिकीय विशेषताओं के कारण यह शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों की विषमताओं में जीवन–यापन की अनुकूलनता का प्रतीक बन गया है। रेगिस्तान के जहाज के नाम से प्रसिद्ध इस पशु ने परिवहन एवं भारवहन के क्षेत्र में अपरिहार्यता दर्शाते हुए अपनी पहचान बनाई है। परंतु इसके अतिरिक्त भी ऊँट की बहुत–सी उपयोगिताएं है जो निरंतर सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों से प्रभावित होती है। ऊँटों ने प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक नागरिक कानून एवं व्यवस्था, रक्षा व युद्ध के क्षेत्र में महत्ती भूमिका निभाई है। तत्कालीन बीकानेर के विश्व प्रसिद्ध गंगा रिसाला को शाही सेना में स्थान मिला था तथा इन ऊँटों ने प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्धों में भी भाग लिया था। राजस्थान के पश्चिमी भाग में इंदिरा गांधी नहर के निर्माण के समय ऊँटों ने इंजीनियरों की बहुत सहायता की थी। आजकल उष्ट्र कोर भारतीय अर्द्ध सैनिक बल के अंतर्गत सीमा सुरक्षा बल का एक महत्वपूर्ण भाग है।

पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा, पंजाब में ऊँट को मुख्यत: भारवाहक पशु के रूप में उपयोग में लिया जाता है। राजस्थान प्रदेश के शुष्क भू–भाग में बसा बीकानेर नगर उष्ट्र बाहुल्य क्षेत्रों में से एक माना जाता है तथा इसी सम्पन्नता की कड़ी में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा उष्ट्र प्रजाति के समग्र विकास व महत्व को दृष्टिगत रखते हुए महत्वपूर्ण अधिदेशों के साथ राष्ट्रीय उष्ट्र अनसुधांन केन्द्र की स्थापना (वर्ष 1984 को) की गई। गत 32 वर्षो में केन्द्र ने उष्ट्र प्रजाति पर गहन वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा इस प्रजाति के विकास की क्रमिक यात्रा तय करते हुए ऊँटों के विभिन्न पहलुओं यथा–प्रजनन, जनन, नस्ल निर्धारण, पोषण, शारीरिक कार्यक्षमताओं, स्वास्थ्य एवं विभिन्न रोगों, प्रबंधन तथा ऊँटनी के दूध आदि पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किए। गहन अनुसंधान द्वारा उपयोगी आँकड़ें तैयार किए गए तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उष्ट्र प्रजाति से संबद्ध अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों के साथ–साथ यह केन्द्र बदलते परिदृश्य में ऊँटों के संरक्षण व विकास हेतु मौलिक व व्यावहारिक अनुसंधान गतिविधियों यथा–स्वास्थ्य शिविरों, किसान गोष्ठियों, प्रशिक्षणों, एम्बुलैटरी क्लिनिक, विविध प्रतियोगिताओं का नियमित आयोजन करता है।

जन जातीय उपयोजना : उद्देश्य

भारत में लगभग 461 जन जातियां है तथा 424 जन जातियां देश के अलग-अलग 7 क्षेत्रों में निवासित है। जन जातियों के मानक स्वरूप में उनका भौगोलिक एकांकीपन, विशिष्ट संस्कृति, पिछड़ापन, संकुचित स्वभाव तथा आदिम जाति के लक्षण माने गए हैं। भारत वर्ष को आजाद हुए 60 वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है परंतु साक्षरता व आधारभूत सुविधाओं की दृष्टि से जन जातीय लोगों की दशा व दिशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं देखा गया। इन जातियों की ऐसी स्थिति में उनकी विषम व पारंपरिक जीवन शैली, सामयिक परिवर्तन की अस्वीकार्यता, भौगोलिक तथा आपात परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी मानी जा सकती है। ये आज भी अधिकांशत: प्रकृति समीपस्थ खेती व पशुधन के अति परंपरागत पद्धतियों से बंधे हुए अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं, नूतन प्रौद्योगिकीय जानकारी की सुलभता-संप्रेषणीयता के अभाव के रहते सामाजिक-आर्थिक स्थिति से विकास की दृष्टि से काफी पिछड़े हुए हैं।

जन जातियों की सामान्य आबादी की तुलना में विकास के अंतर को कम करने व उनके जीवन स्तर में आमूलचूल परिवर्तन के उद्देश्य से प्रेरित होकर भारत सरकार द्वारा जन जाति उपयोजना (टी.एस.पी.) वर्ष 1974-75 में आरंभ की गई जिसका उद्देश्य मानव संसाधन विकास के अन्तर्गत इन जन जातियों में शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं को बढ़ावा मिल सके, आदिवासी क्षेत्रों में आवास सहित बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध करवाते हुए इन जन जातियों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। गरीबी और बेरोजगारी में कमी लाते हुए उत्पादक परिसंपतियों के सृजन और आय बढ़ाने के स्रोतों को तलाशा जाए तथा अवसरों का बेहतर लाभ लेते हुए इन्हें समान सुविधाएं प्राप्त हो सके तथा शोषण व उत्पीड़न के खिलाफ संरक्षण प्रदान करवाया जा सके।

अनुसंधान क्षेत्र व कार्य

इस हेतु जन जातीय अनुसंधान संस्थानों में आंध्रप्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तरप्रदेश आदि प्रदेशों में कुल 14 जनजातीय अनुसंधान संस्थानों (टी.आर.आई.) को दायित्व सौंपा गया है। इसमें अनुसंधान एवं मूल्यांकन अध्ययन, आंकड़ों का संग्रहण, संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं के आयोजन आदि के कार्य शामिल हैं।

राजस्थान प्रदेश में जन जातियों का मुख्य जीवन आधार : खेती व पशुधन

भारत के सात क्षेत्रों में निवासित जन जातियों में से पश्चिमी भारत में निवासित जन जातियों के अन्तर्गत गुजरात, राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र के क्षेत्रों में भील, मीणा, गरासिया, डामोर, सहरिया, बंजारा, कोली आदि प्रमुख हैं। राजस्थान प्रदेश में निवासित लोगों की आजीविका का

मुख्य आधार पशुपालन ही है। सर्वविदित है कि यहां की विषम एवं आपात परिस्थितियों के कारण मानव की निर्भरता पशुधन पर अत्यधिक आधारित रही है। यहां अल्प वर्षा व अकाल की पुनरावृत्ति ने मनुष्य को पशु से जोड़े रखा है। पशुधन में यहां गाय एवं भैंस एवं भेड़, बकरी, ऊँट आदि शामिल हैं। हमारे प्रदेश के जन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में प्रमुख रूप से बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर आते हैं। राजस्थान प्रदेश में पशुधन आधारित व्यवस्था एक प्रमुख कड़ी के रूप में मानी जाती है परंतु जन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में पशुधन संख्या अच्छी–खासी स्थिति में होने के बावजूद इनका उत्पादन स्तर आशानुरूप नहीं कहा जा सकता है क्योंकि पशुधन से अपेक्षित उत्पादन प्राप्त नहीं हो रहा है। इसका मुख्य कारण क्षेत्र के लोगों के पास उत्तम गुणवत्तायुक्त पशुधन का अभाव होना माना जा सकता है। दूसरी इन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में पशुधन व्यवस्था हेतु आधुनिक एवं समुचित पशु पोषण प्रबन्धन की भी जानकारी नहीं है। अत: इनमें पशुपालन व्यवसाय सुनियोजित व सुव्यवस्थित रूप में पहुँचने का एक लाभ यह होगा कि पशुधन विकास एवं उत्पादन की दृष्टि से देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में आशातीत सफलता मिल सकेगी। वहीं जन जातीय क्षेत्रों के निवासितों को सामान्य आबादी की तरह ही जीवन व्यापन करने में सहायता मिल सकेगी। इसी तरह केन्द्र सतत जम्मू व कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र से भी दो कूबड़ीय ऊँटों के संरक्षण एवं विकास हेतु उत्सुक है जहां पर भी बहुतांश निवासी जन जाति के अंतर्गत आते हैं। दो कूबड़ीय ऊँटों की घटती संख्या, उपयोगिता, अंत:प्रजनन, पोषण व प्रबंधन, दो कूबड़ीय उष्ट्र–बच्चों में अधिक मृत्यु–दर आदि यहाँ की मुख्य समस्याएँ हैं।

ऊँटनी का दूध व्यवसाय : प्रबल संभावनाएँ

ऊँट पालकों, किसानों व सभी वर्गो द्वारा ऊँटों को मुख्यत: बोझा ढोने, खेती के काम जैसे–हल चलाने, पानी निकालने, बुवाई करने, सवारी इत्यादि के पारम्परिक कार्यो में उपयोग किया जाता है। परंतु वर्तमान के दौर में ऊँटों की घटती संख्या व उपयोगिता, चरागाहों का सीमित होना, इस पशु विशेष से जुड़ी जातियों–वर्गो का उष्ट्र पालन व्यवसाय के प्रति पलायनवादी दृष्टिकोण एवं युवा वर्ग की उदासीनता/कम रूझान को देखते हुए यह केन्द्र इस पशु को एक नए आयाम में स्थापित करने की कवायद में लगा है। इसे फलीभूत करने हेतु राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र ने ऊँटनी के दूध का महत्व एवं उपयोगिता को उजागर करने इसे सर्वप्रथम लोकप्रिय बनाने के ध्येय को चुना। केन्द्र ने ऊँटनी को एक दूधारू पशु के रूप में स्थापित करने की विचारधारा को अपनाते हुए वर्ष 2006 से पर्यटकों हेतु कैमल मिल्क पार्लर की स्थापना की। इसमें आशातीत सफलता को देखते हुए ऊँटनी के दूध को विपणन आधार पर प्रोत्साहित करने के प्रयोजन से केन्द्र द्वारा इसके दूध व विकसित दुग्ध उत्पादों के उपयोग व संरक्षण हेतु इसके भण्डारण की आवश्यकता को समझा गया तथा इस मिल्क पार्लर पर ऊँटनी का दूध, लस्सी, सुगन्धित दूध की बिक्री पैकेजिंग थैलियों के रूप में प्रारम्भ की गई। ऊँटनी के

दूध को प्रोत्साहित किए जाने हेतु वर्ष 2008 में देश की पहली उष्ट्र-दुग्धशाला की स्थापना करने में यह केन्द्र सक्षम हो सका। एक महत्वपूर्ण व सकारात्मक पहल रूपी अनूठी यह 'कैमल डेयरी' आमजन में कौतूहल का विषय बन गई। इसमें उष्ट्र दूध को स्वच्छता व उचित प्रणाली की कसौटी पर रखते हुए प्रतिदिन मिल्क पार्लर को दूध की आपूर्ति की जाती है जिससे केन्द्र द्वारा विकसित विभिन्न दुग्ध उत्पाद यथा- सुगन्धित दूध, कुल्फी, चाय, कॉफी, लस्सी आदि तैयार कर अपने स्वयं के मिल्क पार्लर के माध्यम से इन उत्पादों की बिक्री की जाती है। इससे केन्द्र को एक अच्छे राजस्व की भी प्राप्ति हो रही है।

केन्द्र इस लाभ को आमजन में एक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए यह संदेश देना चाहता है कि ऊँटनी के दुग्ध व्यवसाय में प्रबल संभावनाएँ छिपी है। केन्द्र परिष्कृत सोच को अपनाते हुए इसे अधिकाधिक ऊँट पालकों, किसानों, जरूरतमंद लोगों तक पहुंचाने की कवायद में सतत रूप से प्रयत्नशील है। ऊँटनी के दूध के प्रति फैली निराधार भ्रान्तियों व मान्यताओं को सिरे से खारिज किया है। यह केन्द्र प्रदेश आदि में लगने वाले विभिन्न पशु मेलों, उत्सव आदि में अपने द्वारा विकसित उष्ट्र दुग्ध उत्पादों के प्रति जागरूकता व लोकप्रियता बढ़ाने हेतु स्टॉल के रूप में अपने विकसित दुग्ध उत्पादों को आमजन हेतु उपलब्ध करवाता है। इस व्यवसाय के प्रति प्रेरित करने के प्रयोजनार्थ ऊँटनी दूहने की प्रतियोगिताओं का आयोजन करता है तथा जीतने वाले प्रतियोगियों को पुरस्कृत भी करता है। ये प्रतियोगिताएं उचित वातावरण का निर्माण करने में सहायक सिद्ध हो रही है वहीं केन्द्र के विकसित स्वादिष्ट उष्ट्र दुग्ध उत्पादों के रसास्वादन हेतु आमजन भी खासा उत्सुक है। उष्ट्र दूध की मुख्य विशेषता यह है कि यह दूध अन्य दुधारू पशुओं के दूध की तुलना में किसी भी प्रकार की एलर्जी नहीं करता है तथा पाचन शक्ति के लिए बेहतर है। अत: ऊँटनी के दूध के प्रति जागरूकता बढ़ाने व इसके औषधीय गुणों को मानव समाज की रोजमर्रा जीवन से जोड़ने की महत्ती आवश्यकता है। ऊँटनी की दूध उत्पादन क्षमता, दुग्धकाल व गुण धर्मो के आधार पर तथा आधुनिक युग में इस प्रजाति के संरक्षण व समाज में इसके उपयोग के नये आयाम स्थापित करने की दिशा में ऊँटनी का दूध आज समाज में स्वास्थ्य की दृष्टि से विभिन्न वर्ग विशेष के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। केन्द्र के इस प्रयोजन को सफल बनाने हेतु ऊँट पालक व किसानों का सहयोग अत्यंत अपरिहार्य है क्योंकि जब तक ये समूह के रूप में ऊँटनी के दूध को व्यवसाय के दृष्टिकोण से अपनाएंगे नहीं यह कारवां आगे नहीं बढ़ेगा। इसी कड़ी में ऊँटनी के दूध का औषधीय महत्व व मूल्य-संर्वद्धन को ध्यान में रखते हुए केन्द्र अब जन जातीय क्षेत्रों में भी इसे वृहद स्तर पर प्रचारित व प्रसारित करने हेतु उत्साहित है। क्योंकि यह देखा गया है कि अन्य पशु के उपयोग की तरह ही जन जातीय लोग ऊँट का पारंपरिक व सीमित कार्यो में उपयोग करते हैं। नतीजतन पशु से आशानुरूप उत्पादन व परिणाम प्राप्त करने में असफल रहते हैं साथ ही यह इनकी संख्या व उपयोगिता को भी प्रभावित करता है। यदि इन क्षेत्रों में

ऊँटनी के दूध जैसे नए आयाम में वैज्ञानिक ज्ञान एवं तकनीकी को अपनाया जाएगा तो इससे न केवल जन जातीय लोगों को आमदानी बढ़ाने का जरिया मिल सकेगा। साथ ही नूतन प्रौद्योगिकी व पशु प्रबंधन संबंधी ज्ञान से उनका लगाव होने पर पशुओं आदि से जुड़ी उपयोगी जानकारी प्राप्त हो सकेगी तथा पशुओं में होने वाले विभिन्न रोगों आदि से भी सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

यह केन्द्र, जन जातीय उपयोजना को लेकर काफी संजीदा है तथा इस उपयोजना के महत्व एवं निहित उद्देश्यों को सार्थकता प्रदान करने हेतु चिन्हित जन जातीय क्षेत्रों के लोगों को उनके पशुओं के स्वास्थ्य और प्रबंधन से जुड़ी प्रत्येक समस्याओं के निराकरण हेतु इन जनजातीय उपयोजना के विविध कार्यक्रमों यथा–स्वास्थ्य शिविरों, किसान गोष्ठियों, प्रशिक्षणों, विविध प्रतियोगिताओं आदि के माध्यम से अपना सतत प्रयास जारी रखे हुए हैं। मानवीय दृष्टिकोण से इस उपयोजना में 'सब पढ़े–सब बढ़े' जैसा मूल भाव निहित है। उष्ट्र प्रजाति के विकास एवं संरक्षण हेतु समर्पित यह केन्द्र अपनी अनुसंधान उपलब्धियों एवं प्रसार गतिविधियों को इन जन जातीय समुदायों के चहुंमुखी विकास हेतु प्रयुक्त करने तथा सामान्य आबादी के मुकाबले उनके विकास अंतर को कम करने में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के मार्फत अपना सहयोग प्रदान करना, किसी एक सुअवसर की भांति मानता है। केन्द्र इसका गहन अवलोकन व मूल्यांकन करेगा कि उसके द्वारा चिन्हित जिलों व क्षेत्रों में निष्पादित गतिविधियों से जन जातीय लोगों को आर्थिक सम्बल मिला हैं कि नहीं ताकि सार्थकता की दृष्टि से इनकी सफलता सुनिश्चित की जा सके।

एन.वी.पाटिल

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ सं.
1	निदेशक की कलम से	i
2	ऊँट आनुवंशिक स्त्रोत एवं उनकी उपयोगिता	01
3	ऊँटों में होने वाली प्रमुख संक्रामक बीमारियाँ	06
4	ऊँटों की चमड़ी के फफूँद रोग और उनका इलाज	12
5	ऊँट पर परजीवी रोगों का प्रभाव और नियंत्रण	16
6	ऊँटों का वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन	21
7	ऊँट के नवजात बच्चे एवं माँ की देखभाल	27
8	उष्ट्र दुग्ध उत्पादन व प्रसंस्करण की व्यावसायिक संभावनाएं	29
9	पशुओं में होने वाली प्रमुख बीमारियाँः लक्षण एवं उपचार	33
10	पशुओं का टीकाकरण करवाएंः संक्रामक रोगों से बचाएं	39
11	गाय एवं भैंस के बछड़ों की देखभाल	43
12	बैकयार्ड कुक्कुट पालन	48
13	बकरियों का स्वास्थ्य प्रबंधन	55
14	अश्वों में प्रजनन प्रबंधन	62
15	पशुओं में खुरपका–मुँहपका रोग : एक परिचय	66
16	पशुओं में वानस्पतिक एवम् रासायनिक विषाक्तताः लक्षण, उपचार एवं बचाव	70
17	खनिज तत्व : पशु स्वास्थ्य व उत्पादन में सहायक	75
18	जनजातीय क्षेत्र में बागवानी फसल उत्पादन की नवोन्वेषित व्यवस्थाएँ	84
19	एजोलाः पशुओं के लिए पौष्टिक आहार	91
20	पशुपालन व्यवसाय : कल्याणकारी योजनाएँ	95
21	सहकारी समिति का उष्ट्र दूध व्यवसाय में महत्व	99
22	जनजातीय उपयोजना के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा निष्पादित गतिविधियाँ	101

ऊँट आनुवंशिक स्त्रोत एवं उनकी उपयोगिता

शरत् चन्द्र मेहता

यह सभी को ज्ञात है कि किसी भी जीव की उपयोगिता ही उसे बचाती है। समय के अनुसार इस उपयोगिता में बदलाव आता रहता है। वर्तमान परिस्थितियों में ऊँट इसी प्रकार के एक बड़े बदलाव के दौर से गुजर रहा है जहाँ इसके पुराने उपयोग का महत्व क्षीण होता जा रहा है वहीं नये उपयोग को खोजना एक चुनौती पूर्ण कार्य हो गया है। वर्तमान में ऊँट अपने पारम्परिक उपयोग बोझा ढोने के बजाय दुग्ध एवं कुछ हद तक मांस के उत्पादन में काम आ रहा है। विश्व की गरीब जनता के लिये उष्ट्र दूध एवं मांस प्रोटीन का एक मुख्य स्त्रोत है। विश्व में 27.77 मिलियन ऊँट है जो कि 47 देशों में पाये जाते हैं। ऊँटो की करीब 85 प्रतिशत आबादी पूर्वी एवं उत्तरी अफ्रिकी देशों, भारतीय उप-महाद्विपीय देशों एवं मध्य पूर्वी देशों में पाई जाती है। वर्ष 2012 की पशु गणना के आधार पर भारत में ऊँटों की कुल संख्या 4 लाख है एवं यह विश्व में उष्ट्र संख्या के हिसाब से 12 वें स्थान पर आता हैं।

भारतीय उष्ट्र वंश

भारत में दो प्रकार के ऊँट पाये जाते हैं। एक कूबड़ वाले जिनको वैज्ञानिक भाषा में 'ड्रोमेडरी' कहते हैं एवं दूसरे दो कूबड वाले जिनको वैज्ञानिक भाषा में 'बैक्टीरीयन' कहते हैं। वर्ष 2012 की पशु गणना के आधार पर भारत में ऊँटों की कुल संख्या 400247 हैं। राजस्थान में 325713, गुजरात में 30415, हरियाणा में 18845, उत्तरप्रदेश में 7935 एवं मध्यप्रदेश में 3422 ऊँट हैं। नस्लवार ऊँटों की संख्या का अनुमान लगाएं तो सबसे कम ऊँट मेवाड़ी नस्ल के हैं, इनकी अनुमानित संख्या 6820 है। कच्छी ऊँट 23338 है। जैसलमेरी 85512 है एवं बीकानेरी 236367 है। लद्दाख मे दो कुब्बड़ वाले ऊँटों की संख्या 214 है।

बीकानेरी: बीकानेरी नस्ल के ऊँट बीकानेर एवं आस-पास के जिलों जैसे गंगानगर, हनुमानगढ़, चूरू, झुन्झुनूं, सीकर एवं पास के राज्य हरियाणा में पाये जाते हैं। इसका प्रजनन क्षेत्र शुष्क है एवं यहाँ काफी कम वर्षा होती है। बीकानेरी ऊँटों को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह दिखने में सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट होते हैं। यह मुख्य रूप से बोझा ढ़ोने वाली नस्ल हैं, लेकिन इसका दूध एवं बाल उत्पादन भी अच्छा हैं। ये ऊँट अच्छी कद-काठी के मजबूत शरीर वाले एवं फूर्तीले होते हैं। इन ऊँटों का रंग गहरा भूरा व काला होता है। इनके सिर पर ''स्टोप'' होता है एवं इन ऊँटों के कानों पर, आँखों की पलकों एवं भौंह के ऊपर अधिक बाल होते हैं। इस लक्षण को आम बोलचाल में ''झींपरा'' कहते हैं। औसतन एक बीकानेरी ऊँट का जन्म के समय वजन 38 किलो एवं वयस्क अवस्था में 600 किलो होता है। ये लगभग 800 ग्राम बाल प्रतिवर्ष पैदा करते हैं, इन बालों की लम्बाई 6.27 सेमी होती है। इनका उपयोग ऊँट पालक कम्बल, शॉल, दरी, रस्सी आदि बनाने में काम लेते हैं।

जैसलमेरी : जैसलमेरी ऊँट जैसलमेर, बाड़मेर जिलों एवं जोधपुर जिले के कुछ हिस्सों में पाये जाते हैं। ये लम्बी दूरी तय करने एवं दौड़ के लिये उपयुक्त हैं। इनका शरीर हल्का एवं गठीला, रंग हल्का भूरा तथा सिर छोटा एवं नाक तीखा होता है। इनका प्रजनन क्षेत्र शुष्क एवं कम वर्षा वाला है। इनमें बालों का उत्पादन 700 ग्राम प्रतिवर्ष होता है एवं बालों की लम्बाई 6 सेमी होती है। इनका जन्म के समय वजन 36 किलो एवं वयस्क अवस्था में वजन 595 किलो होता है।

कच्छी : यह नस्ल गुजरात में कच्छ एवं आसपास के क्षेत्रों में पाई जाती है। यह दूध उत्पादन एवं बोझा ढ़ोने के लिये उपयुक्त है। इसका प्रजनन क्षेत्र दलदल एवं नमी वाला है। इनका रंग गहरा भूरा होता है। इन ऊँटों का जन्म के समय वजन 36 किलो एवं वयस्क अवस्था में 550 किलो होता है। इनके बाल घुँघराले एवं छोटे होते हैं। इनके बालों का वार्षिक उत्पादन 600 ग्राम होता है एवं बालों की लम्बाई 4.42 से.मी. होती है।

मेवाड़ी : यह नस्ल दक्षिणी राजस्थान एवं पास में लगते हुए मध्य प्रदेश में पाई जाती है। इसका प्रजनन क्षेत्र पहाड़ी है। यहाँ अपेक्षाकृत वर्षा अधिक होती है एवं हरियाली भी ज्यादा है। ये ऊँट थोड़े छोटे होते हैं एवं इनका शरीर गठीला होता है। इनके पीछे के पुट्ठे मजबूत होते हैं एवं पैरों का तला कड़क होता है। ये पहाड़ी क्षेत्र में सामान लाने–ले जाने के लिये उपयुक्त हैं। ये ऊँट दूध उत्पादन में भी बहुत अच्छे हैं एवं वर्तमान में इनको दूध उत्पादन के लिये हीं पाला जा रहा है। इनके शरीर पर जिस प्रकार के बाल पाये जाते हैं वे इनको मधुमक्खियों एवं अन्य कीड़ों के काटने से बचाते हैं। ये ऊँट रंग में हल्के भूरे से सफेद होते हैं।

सिंधी : सिंधी नस्ल के ऊँट सिंधु नदी के निचले हिस्से एवं इसके डेल्टा क्षेत्र में पाये जाते हैं। यह क्षेत्र अब मुख्य रूप से पाकिस्तान में है लेकिन कुछ सिंधी लोग भारत में सीमावर्ती जिलों जैसे जैसलमेर एवं कच्छ क्षेत्र में निवास करते हैं एवं सिंधी ऊंटों को पालते हैं। यह ऊँट सामान्यतया लाल या गहरे भूरे रंग के होते हैं। ये थोड़े छोटे, गठीले एवं भारी प्रकार के होते हैं। इनकी कपाल विशिष्ट रूप से बाहर निकली हुई होती है, नाक सीधी एवं थूथन अच्छी होती है। इनके पैर पतले होते हैं एवं पैरों के नाखून अन्य नस्ल ऊँटों की तुलना में लंबे होते हैं जो दलदल में बिना फिसले चलने में मदद करते हैं। इन्होंने अपने आप को समुद्री किनारों पर दलदल एवं खाइयों में सदाबहार चराई के लिए पूर्ण रूप से ढाल लिया है। ये सामान लाने ले जाने के लिए उपयुक्त हैं लेकिन ये बिना पानी के अधिक समय तक नहीं रह सकते हैं। ये कच्छी नस्ल से मिलते जुलते हैं एवं इनको कच्छी नस्ल के ऊँटों की पूर्वज पीढ़ी भी माना जाता है। वर्तमान में सिंधी नस्ल के ऊँटों को चार तरह के ऊँटों में बांटा गया है, ये हैं लारी, धाती, खराई एवं सकराई। अभी हाल ही में सिंधी–खराई प्रकार के ऊँटों का भारत में भी चरित्रण किया गया है।

दो थूई वाले ऊँट : ये ऊँट भारत में जम्मू–कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र की नुब्रा घाटी में पाये जाते हैं। इनकी अनुमानित संख्या 214 है । यह कद में छोटे, वजन में हल्के एवं भूरे रंग के होते हैं। इनका प्रजनन क्षेत्र शुष्क एवं यहाँ तापमान गर्मियों में बहुत अधिक एवं सर्दियों में बहुत कम हो जाता है। यह क्षेत्र समुद्रतल से लगभग 10000 फीट की ऊँचाई पर है एवं यहाँ भी ये पहाड़ों में लम्बी दूरी तय करने के काम आते हैं । इनके शरीर पर बाल अधिक होते हैं, जो कि इनको सर्दियों में कम तापमान से बचाते हैं ।

विश्व परिदृश्य को देखते हैं तो पता चलता है कि इनकी कुल आबादी 2 मिलियन के आसपास है। एक अनुमान के अनुसार करीब 800 ऊँट उत्तर पश्चिमी चीन व मंगोलिया में जंगली अवस्था में हैं। दो कूबड वाले ऊँटों की कुछ आबादी जंगली अवस्था में गोबी रेगिस्तान में भी है। एक अध्ययन के अनुसार जंगली एवं पालतू दो कुब्बड वाले ऊँटो में करीब 3 प्रतिशत अनुवाशिकी विषमताएँ हैं । सिल्क रूट बन्द होने के बाद से इन ऊँटों का बहुत ही छोटा समूह भारत में रह गया था, इसलिये इनमें अन्त:–प्रजनन काफी मात्रा में हो गया है ।

उष्ट्र कार्य–क्षमता

ऊँट अपनी कार्य क्षमता के कारण ही सदियों से पाला जा रहा है । यह रेगिस्तान में खेतों में कार्य करने, बोझा ढोने एवं सवारियाँ ढोने के काम में लम्बे समय से आ रहा है। रेगिस्तान में कार्य करने के लिये यह सबसे उपयुक्त पशु है, क्योंकि यह कम व अधिक तापमान में कम पानी पी कर भी लम्बी दूरी तय कर सकता है। बीकानेरी नस्ल इस कार्य के लिये सर्वोत्तम मानी गई है।

उष्ट्र डेयरी

बदलते हुए परिवेश में जहाँ यांत्रिकीकरण के कारण पशुओं के भार ढ़ोने की क्षमता का उपयोग घटता जा रहा है वहीं अन्य उपयोगों से उनका संरक्षण करने एवं आनुवांशिक भिन्नता को बनाये रखने का प्रयास किया जा रहा है। विश्व परिदृश्य में अगर ऊँटों की संख्या एवं इनके उत्पाद का देखें तो पता चलता है कि वर्ष 1961 से वर्तमान में ऊँट संख्या लगभग दोगुनी है एवं दुग्ध उत्पादन एवं मांस उत्पादन करीब तीन गुना हो गया है । उष्ट्र दूध एवं मांस गरीब जनता के लिये प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत है। ऐसी स्थिति में हमें उष्ट्र दूध उत्पादन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। मानव की उष्ट्र द्वारा आवश्यकता पूर्ति ही इसकी संख्या में निरन्तर वृद्धि का कारण है। मेवाड़ी उष्ट्र दुग्ध उत्पादन का स्वरूप उष्ट्र पालन क्षेत्रों में लागू करने के लिये एक विशिष्ट स्वरूप हैं । इससे न केवल पशुपालक को रोज आय होती है, बल्कि बदलते हुए परिवेश में ऊँटों को पालने का एक महत्वपूर्ण कारण भी देती है । एक साँड 16 महीने तक लगातार दूध दे सकती है। औसतन प्रतिदिन उत्पादन 7 लीटर एवं एक दूध काल में 3400 लीटर दूध देती है। कुछ अच्छी मादाएँ 10–12 लीटर दूध प्रतिदिन देती हैं जिनका

उपयोग चयनित प्रजनन में कर आनुवांशिक सुधार किया जा सकता है।

- सामान्यतया एक ऊँटनी 6-7 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।
- सामान्यतया ऊँटनी 16 महीने तक पर्याप्त दूध देती है।
- इस 16 महीने के दुग्धकाल में एक ऊँटनी करीब औसत 3400 लीटर दूध देती है।
- अच्छी ऊँटनियाँ औसत 10 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।
- अत्यधिक उत्पादन दुग्धकाल के 5 वें महीने में होता है।
- अत्यधिक उत्पादन के दौरान अच्छी ऊँटनियाँ करीब 16 लीटर दूध देती है।

उष्ट्र दूध का महत्व

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन करने से पता चलता है कि ऊँटनी का दूध मानव के लिये अनेक उपयोगिताओं से परिपूर्ण है। इसके सेवन से शरीर में कई रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ती है। यह एक अच्छा स्वास्थ्यवर्धक पेय है। यह भी देखा गया कि संपूर्ण विश्व में गाय-भैंस से प्राप्त दूध मानव की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पा रहा है एवं लगभग 16-17 प्रतिशत दूध अन्य पशुओं से प्राप्त किया जा रहा जिनमें ऊँट भी एक महत्वपूर्ण पशु है। यह भी देखा गया कि भारी मात्रा में नकली दूध बनाकर बाजार में बेचा जा रहा है। ऐसी स्थिति में ऊँटनी का दूध एक वरदान के रूप में है क्योंकि ऊँट वो वनस्पतियाँ भी खा लेता है जो कि सामान्यतया अन्य पशु नहीं खाते हैं। यह विषम परिस्थितियों में भी अपना जीवन निर्वहन कर लेता है जहाँ अन्य पशुओं को काफी परेशानी होती है। इस सबके बावजूद उच्च गुणवता वाला दूध अच्छी मात्रा में यह प्रदान करता है।

भारत में दूध ही प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत्र है क्योकि अधिकतर भारतीय शाकाहारी है। पशुपालन विभाग, भारत सरकार एवं पशुपालन विभाग राजस्थान सरकार तथा भारत की जनगणना 2011 के ऑकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि राजस्थान 13234 हजार टन दूध उत्पादन के साथ देश में दूसरे स्थान पर है एवं यहाँ प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता 193.06 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हैं। जिलेवार विश्लेषण करने पर पता चलता है कि राजस्थान के विभिन्न जिलों में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष दुग्ध उपलब्धता 93.37 किलोग्राम से 293.27 किलोग्राम के मध्य है। अलवर जिले में प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता सर्वाधिक होने के साथ कोटा, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर , उदयपुर एवं चितौडगढ़, सबसे कम दुग्ध उपलब्धता वाले जिले हैं। ऐसा देखा गया कि कम दुग्ध उपलब्धता वाले क्षेत्रों में ऊँटों की संख्या भी गणना योग्य है। यहाँ उष्ट्र दुग्ध उत्पादन एवं विपणन कई दशकों से चल रहा था। यहाँ तक कि ऊँटनी के दूध के विपणन को लेकर जो प्रयास देश की सर्वोच्च अदालत तक गये, वह भी वर्ष 1978 में

उदयपुर में ही प्रारम्भ हुए थे। ऐसी स्थिति में यह बहुत ही प्रासंगिक हो जाता है कि इस क्षेत्र के ऊँटों की दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिये सार्थक प्रयास किये जायें । यहाँ यह उल्लेख करना भी अति–महत्वपूर्ण होगा कि इस क्षेत्र में लगभग 8 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति की है एवं 49 प्रतिशत जन संख्या अनुसूचित जन जाति की हैं, जिनको मुख्यधारा से जोड़ने के लिये भारत सरकार विशिष्ट प्रयास कर रही है एवं उनके लिये अलग से कार्यक्रम चला रही है।

आजीविका सुरक्षा, पोषण सुरक्षा एवं उष्ट्र संरक्षण

हाल ही में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार मेवाड़ क्षेत्र में एक उष्ट्र दुग्ध उत्पादक के पास कुल ऊँटों की संख्या का 31 प्रतिशत दूध वाली ऊँटनियों की होती है । प्रति ऊँटनी 2.8 लीटर दूध प्रतिदिन बाजार में बेचा जाता है । आंकड़ों के आधार पर यह मान लिया जावे कि क्षेत्र में ऊँटों की संख्या वर्ष 2007 की संख्या से करीब 25 प्रतिशत कम हो गई हो तो इस क्षेत्र में कुल ऊँटों की संख्या 10408 रह जाती है, जिनमें से 4335 प्रजनन योग्य होती है एवं 3226 मादाएँ दूध में होती है । इस प्रकार करीब एक हजार दूध वाली ऊँटनियां 2800 लीटर दूध प्रति दिन अथवा 1022 टन प्रति वर्ष देती है एवं देश में 276 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धता के अनुसार लगभग 10000 व्यक्तियों की दूध की आवश्यकता को पूर्ण करती है।

दुग्ध उत्पादन क्षमता के आंकलन से पता चलता है कि एक ऊँटनी की दूध उत्पादन क्षमता को 6 लीटर प्रति दिन तक आसानी से बढ़ाया जा सकता है क्योंकि 10 लीटर प्रति दिन दूध देनी वाली मादाएँ एवं उनसे सम्बन्धित नर ऊँटों की पर्याप्त संख्या प्रदेश में उपलब्ध है। इस प्रकार जो 1000 ऊँटनियाँ वर्तमान में 10000 लोगों की दूध की आवश्यकता को पूर्ण करती है वो आसानी से 20000 लोगों की दूध की आवश्यकता को पूर्ण कर सकती है। इस प्रकार योजना को अगर सरकार एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं से मदद मिले एवं उचित पॉलीसी का समर्थन मिले तो अधिक से अधिक ऊँटनियों को इस प्रकार की परियोजना में सम्मिलित कर दुग्ध उत्पादन एवं उससे लाभान्वित होने वाली जनसंख्या को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कम दूध उपलब्धता वाले जिलों में प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता बढ़ने से उस क्षेत्र के लोगों की पोषण सुरक्षा में भी अभूतपूर्व योगदान दिया जा सकता है साथ ही उष्ट्र दुग्ध उत्पादन क्षमता बढ़ने से एक उष्ट्र पालक की आय में भी वृद्धि होगी एवं इससे के प्रजनन क्षेत्र में ही उनके संरक्षण में मदद मिलेगी । इनके अलावा ऊँटों से प्राप्त बाल, चमड़ा एवं हड्डी के सामानों की बिक्री करके भी किसान भाई अच्छी कमाई कर सकते हैं ।

ऊँटों में होने वाली प्रमुख संक्रामक बीमारियाँ

शिरीष डी. नारनवरे

ऊँट पालकों को अपने ऊँटो के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए उन्हें होने वाली सामान्य बीमारियों के बारे में जानकारी रखना अत्यंत आवश्यक है। यद्यपि ऊँटों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत अच्छी होती है और उनमें बीमारियाँ भी काफी कम पाई जाती है परंतु कुछ बीमारियाँ काफी गंभीर होती है और इनसे ऊँट पालकों को नुकसान झेलना पड़ सकता है। यह नुकसान उनको न केवल इस बीमारी के उपचार/दवाई के खर्चे में होता है, बल्कि रोगग्रस्त ऊँट के अपर्याप्त विकास दर, वजन व दूध में कमी से भी होती है। इस लेख में ऊँटों में होने वाली कुछ प्रमुख बीमारियों यथा–सर्रा (तिबरसा), खुडक (निमोनिया), ब्रुसेल्लोसिस, खुजली (मेंज), मूमड़ी व माता (पॉक्स) के लक्षण व उसके उपचार के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

विषाणु जनित रोग

1. चेचक/पॉक्स (कैमल पॉक्स)

इस रोग में बुखार के साथ ऊँटो के पूरे शरीर की त्वचा व कभी–कभी मुख, पाचन तंत्र तथा श्वसन तंत्र की आंतरिक त्वचा पर छोटी–छोटी फुन्सियाँ हो जाती है। कुछ दिन पश्चात यह सूखकर गिर जाती है और उस स्थान पर निशान छोड़ जाती है। इस रोग में मुंह से लार बहना, आँख तथा नाक से पानी बहना, आँखों का सफेद हो जाना, बाह्य लसीका ग्रंथियों में सूजन, दस्त तथा गर्भपात जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोग से ग्रसित ऊँट की मृत्यु भी हो सकती है।

एंटीसेप्टिक लोशन जैसे पोटैशियम परमैंगनेट का घोल (0.2 प्रतिशत) पानी में मिलाकर अथवा 3 प्रतिशत आयोडीन का घोल फुन्सियों पर रोज लगाते रहना चाहिए। जीवाणुओं के संक्रमण को रोकने के लिए पशु चिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार शुरू कर देना चाहिए।

2. मूमड़ी (कॉन्टेजियस एक्थाइमा)

मूमड़ी अर्थात् कॉन्टेजियस एक्थाइमा भेंड़, बकरियों, ऊँटों तथा अन्य मवेशियों में होने वाली त्वचा संबंधी एक गंभीर बीमारी है। छूत का रोग होने के कारण इसका फैलाव अत्यधिक तेजी से होता है। इस रोग का प्रकोप सामान्यत: मानसून से पहले अथवा बरसात के महीनों (जुलाई से सितम्बर) में ज्यादा देखने को मिलता है। साधारणत: यह दो साल अथवा इससे कम उम्र के ऊँटों में पाया जाता है। वयस्क ऊँटों में यह बीमारी नहीं पाई जाती। इस रोग में मुख्यतया मुँह, होंठ, नाक, आँख व गले के आस–पास वाली त्वचा पर तीव्र दर्द वाली फुंसियाँ आनी शुरू होती है। कुछ दिन बाद ऊँटों के मुँह व

जबड़ों में सूजन आ जाती है जो एक सप्ताह तक रह सकती हैं। यदि तुरंत उपचार न किया जाए तो फुन्सियाँ घाव का रूप धारण कर लेती है। ऐसे घावों में मक्खियां बैठने के कारण इनमें कीड़े भी लग सकते हैं। कुछ दिन बाद ये घाव गाँठों में परिवर्तित हो जाती हैं तथा ऐसी स्थिति एक सप्ताह तक रह सकती है। इसके बाद इन गाँठों के ऊपर एक सूखी पतली परत जमनी शुरू होती हैं। बाद में यह पतली परत मोटी बन जाती है व सूखकर अपने आप गिर जाती है जिससे उस जगह पर गहरे निशान बन जाते हैं। इसके कुछ दिन बाद त्वचा अपने आप ठीक होने लगती है। यदि कोई जटिलता अथवा संक्रमण न हो तो ये लक्षण 3 से 6 सप्ताह में अपने आप ठीक हो जाते हैं। यदि घावों में जीवाणु संक्रमण हो जाए तो मूमड़ी के लक्षणों को ठीक होने में 10 सप्ताह तक का समय भी लग सकता है।

एंटीसेप्टिक लोशन जैसे पोटैशियम परमैंगनेट का घोल (0.2 प्रतिशत) पानी में मिलाकर अथवा 3 प्रतिशत आयोडीन सोल्यूशन फुन्सियों पर रोज लगाते रहना चाहिए। मक्खियों को भगाने के लिए घावों पर टॉपीक्यूअर स्प्रे, लोरक्सीन मलहम अथवा हीमॅक्स मलहम लगाया जा सकता है। पशुचिकित्सक की सलाह से प्रतिजैविक औषधोपचार शुरू कर देना चाहिए। यदि घावों में कीड़े पड़ गए हैं तो तारपीन का तेल अथवा फिनाईल के घोल से घावों की सफाई करें। रोग ग्रसित ऊँटों को तुरंत अन्य स्वस्थ ऊँटों से अलग कर देना चाहिए ताकि वे स्वस्थ ऊँट के संपर्क में न आ सके और बीमारी न फैले। यदि यह बीमारी एक टोले में आ गयी है तो इस टोले को दूसरे टोले के पशुओ से अलग रखें।

3. हिड़काव/रेबीज

ऊँटों में रेबीज बीमार/पागल कुत्ते, बिल्ली, नेवला, लोमड़ी, गीदड़, चमगादड और बन्दर के काटने से हो सकता है। रोगग्रस्त पशुओं की लार में इसके विषाणु पाए जाते हैं और उनके काटने पर वे स्वस्थ जानवर या मनुष्य में बीमारी पैदा कर सकते हैं। इसलिए अगर किसी पागल कुत्ते बिल्ली या बन्दर आदि ने काटा हो तो तुरंत ही रेबीज से बचाव के टीके लगवाने चाहिए। पालतू बिल्ली एवं कुत्तों में इस बीमारी से बचाव के टीके नियमित रूप से लगवाने चाहिए।

जीवाणु जनित रोग

1. गलघोंटू/खुड़क (हीमोरेजिक सेप्टिसेमिया)

इस रोग में तेज बुखार के साथ गले के आस-पास सूजन आ जाती है, श्वास लेने में तकलीफ होती है तथा श्वास लेते समय घर्र-घर्र जैसी आवाज आती है। नाक से सफेद गाढ़ा स्राव निकलता रहता है, बाह्य लसीका ग्रन्थियों में सूजन आ जाती है, पशु सुस्त हो जाता है तथा खाना-पीना कम कर देता है। यह मानसून के समय होता है और तेजी से फैलता है। यह एक खतरनाक रोग है, बीमार पशु इलाज के बिना मर भी सकता है। शुरुआत में तेज बुखार (105-107 डिग्री फा.) होता है, गर्दन में

सूजन के कारण सांस लेने के दौरान घर्र-घर्र की आवाज आती है और इलाज न होने पर 12-24 घंटे में मौत हो सकती है। रोग से मरे पशु को गढ्ढे में दफनाएं, खुले में फेंकने से रोग फैलने का खतरा बना रहता है। पशुचिकित्सक की सलाह से तुरंत प्रतिजैविक इजेक्शन लगाएं। बुखार के लिए बुखार रोधी इंजेक्शन लगाएं।

2. क्षयरोग/टी.बी. (टियूबरक्लोसिस)

क्षय रोग (टी.बी.) ऊँट, गाय, भैंस, भेड़,बकरी, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य, जंगली पशु, पक्षियों इत्यादि मे पाई जाने वाली एक बहुत पुरानी संक्रामक बीमारी है। यह रोग बीमार ऊँटों से मनुष्यों में भी फैल सकता है, अत: ऊँट पालक को न केवल ऊँट बल्कि स्वयं को भी क्षय रोग से बचना जरुरी है। इस बीमारी में पशु में बुखार, भूख की कमी तथा कमजोरी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। यह लक्षण कई सालों तक बने रहते हैं और अंतत: ऊँट की मृत्यु हो जाती है। रोगग्रस्त जानवर के कफ/बलगम, छींक, नाक से निकलने वाले स्राव, श्वास, गोबर, मूत्र, दूध, रक्त तथा कभी-कभी वीर्य में क्षय रोग के जीवाणु मौजूद होते हैं व स्वस्थ ऊँटों या मनुष्यों में यह हवा के द्वारा साँस लेने पर अथवा जीवाणुओं से संक्रमित दूध के सेवन अथवा संक्रमित चारे व पानी के सेवन से यह बीमारी फैल सकती है। कमजोर ऊँटों व जिनमें पौष्टिक आहार की कमी हो, उनमें यह रोग होने की संभावना अधिक होती है। जिन पशुओं में रोग प्रतिकार क्षमता कम होती है, जैसे नवजात बछड़े अथवा बूढ़े ऊँट अथवा ब्याने के बाद आई शरीर में कमजोरी अथवा कोई अन्य रोग का संक्रमण जैसे सर्रा (तिबरसा) इत्यादि में यह रोग होने का खतरा ज्यादा रहता है। क्षय रोग से ग्रसित मनुष्य के मल, थूक या कफ, ऊँटों के चारे या पानी के संपर्क में आने पर यदि इसका सेवन ऊँटों द्वारा किया जाए तो भी इस रोग का संक्रमण हो सकता है। इस रोग में लक्षण काफी समय बाद व धीरे-धीरे प्रकट होते हैं तथा कई बार लक्षणों का पता ही नहीं चल पाता। इस बीमारी में रोग ग्रस्त ऊँट में कई दिनों तक रहने वाला हल्का बुखार, खान-पान में कमी तथा कमजोरी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं, ये लक्षण कई महीनों अथवा सालों तक रह सकते हैं। प्रतिजैविक दवा देने से भी ऊँट की हालत मे सुधार नहीं होता। ऊँटों में खांसी, श्वास लेने में तकलीफ व श्वास लेने की गति में वृद्धि जैसे लक्षण दिखाई देते हैं व अंतत: ऊँट की मृत्यु हो जाती है। पौष्टिक आहार के बावजूद रोगग्रस्त ऊँट का वजन धीरे-धीरे कम होता जाता है। जब थनों में यह रोग होता है तो मादा ऊँट के थनों में सूजन व छोटी-छोटी गांठे बन जाती हैं, दूध उत्पादन कम हो जाता है, दूध मे सफेद छिछड़े आते हैं तथा बाद में दूध का रंग हरा-पीला हो जाता है। अंतत: दूध के स्थान पर पानी जैसा स्त्राव आता है। इस रोग का निदान केवल लक्षणों के आधार पर करना मुश्किल है क्योंकि इसके लक्षण अन्य संक्रामक बीमारियों से काफी मेल खाते हैं। क्षय रोग से ग्रसित ऊँट का शव परीक्षण करने पर फेफडों में सफेद-पीली कठोर गाँठे (ग्रेनुलोमा) दिखाई देती है। कभी-कभी इनमें मवाद भी हो

सकता है। यह गाँठे दीर्घकालीन रोगग्रस्त ऊँटों में अन्य अंगों जैसे यकृत, प्लीहा, हृदय, गुर्दे, गर्भाशय, आँत व मस्तिष्क में भी पाई जा सकती है।

इस रोग का उपचार काफी लंबा व खर्चीला है व इसमें ठीक होने की संभावना भी काफी कम होती है। बीमार ऊँटों को अन्य स्वस्थ ऊँटों से दूर ही रखें। क्षय रोग से ग्रस्त ऊँट के शव को भी या तो जला दें या जमीन में गहराई पर दफन कर दें ताकि आवारा कुत्ते संक्रमित शव बाहर न निकाल पाएं। कच्चे दूध का सेवन कभी भी न करें व दूध को हमेशा अच्छे से उबालकर ही पिएं ताकि न केवल क्षय रोग बल्कि अन्य रोग के जीवाणु (ब्रुसेल्ला इत्यादि) अथवा विषाणु भी मर जाएँ। ऊँटो को पौष्टिक आहार खिलाना चाहिए ताकि उनकी प्रतिरक्षा प्रणाली किसी भी संक्रमण से लड़ने में सक्षम रहे। क्षय रोग से ग्रस्त व्यक्ति को पशुओं के बाड़े में काम नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे व्यक्ति के थूक व बलगम में इस रोग के जीवाणु मौजूद होते हैं जो सहकर्मियों व पशुओं में संक्रमण फैला सकते हैं।

3. ब्रुसेल्लोसिस

इस रोग से ग्रसित ऊँटनियाँ गर्भावस्था में आखरी 3 महीने में गर्भ गिरा देती है अथवा समय से पहले ब्याती है। इन ऊँटनियों में जेर नहीं निकल पाती, थनों में सूजन होती है व इनके बच्चे भी कमजोर होते हैं। नर ऊँटो के अन्डकोशों में सूजन आ जाती है। इसके अलावा पशु में कभी-कभी बुखार, जोड़ों में दर्द व लेवटी की सूजन जैसे लक्षण देखने को मिलते हैं। इस रोग का प्रसार मुंह अथवा श्वास द्वारा ब्रुसेल्लोसिस जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने पर होता है। साथ ही त्वचा अथवा आँख द्वारा भी इसका प्रसार हो सकता है। गर्भपात हुए भ्रूण में पूरे शरीर में सूजन, निमोनिया व सभी आन्तरिक स्थानों में जलभराव जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसी बीमारी का पता चलते ही तुरंत पशु की जाँच करवाएं अन्यथा बीमार पशु से जीवाणु, पशुओं के साथ काम करने वाले व कच्चा दूध का सेवन करने वाले मनुष्यों तथा संपर्क में आने वाले अन्य पशुओ में रोग पैदा कर सकते हैं। पशुचिकित्सक की तुरंत सलाह लेनी चाहिए व प्रतिजैविक औषधोपचार देना चाहिए।

4. नवजात ऊँटों में दस्त (काफ डायरिया)

यह बीमारी नवजात ऊँटों में जन्म से लेकर 10-15 दिनों की आयु तक पाई जाती है। इस रोग में तीव्र दस्त तथा बुखार के लक्षण दिखाई देते हैं। जोड़ों तथा नाभि में सूजन जैसे लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। दस्त की वजह से शरीर में पानी की कमी हो जाती है। शरीर में पानी की कमी दूर करने के लिए डी.एन.एस. दें। साथ ही प्रतिजैविक औषधोपचार भी पशु चिकित्सक की सलाह पर नियमित रूप से दें।

परजीवी जनित रोग

1. सर्रा/तिबरसा (ट्रीपैनोसोमिएसिस)

यह ऊँटो में पाई जाने वाली एक मुख्य बीमारी हैं। इसका प्रसार मक्खियों के काटने से होता है। इसमें तेज बुखार, कमजोरी, खून की कमी व गर्भपात जैसे लक्षण पाए जाते हैं। इसका निदान रक्त के नमूनों की जाँच से तुरंत किया जा सकता है। पशुचिकित्सक की सलाह से एंट्रीसाइड इंजेक्शन लगाना चाहिए। साथ ही कमजोर जानवरों को विटामिन–बी काम्प्लेक्स का इंजेक्शन लगाना चाहिए।

2. फीता कृमि

यह बीमारी 'इकायनोकोकस ग्रेनुलोसस' नामक फीता कृमि से होती है जो कि कुत्तों के मल द्वारा ऊँटों के पेट में चले जाते हैं। बाद में यह फीता कृमि ऊँट के यकृत, फेफड़े व पेट के अंदर सिस्ट बनाते हैं। मनुष्यों में भी यह बीमारी इन सिस्ट के संपर्क में आने से हो सकती है। इस रोग में मनुष्यों में मस्तिष्क, लीवर आदि में सिस्ट बन जाते हैं। अगर बीमारी का समय पर निदान व उपचार न किया जाए तो मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है।

3. पाँव/खुजली/मेंज रोग

यह एक प्रकार के सूक्ष्म कीट (माईट) द्वारा होने वाला रोग है। यह सभी पशुओं जैसे ऊँट, घोड़ा, गाय, भैंस एवं कुत्ते आदि में होता है। इसमें माईट त्वचा में सुरंग बनाती है तथा बहुत तेज खुजली पैदा करती है। बाद में त्वचा सूखी होकर फटने लगती है तथा खून बहने लगता है। यह एक पशु से दूसरे पशु में त्वचा के सीधे संपर्क से फैलता है। इस रोग की रोकथाम के लिए ग्रसित पशुओं को अलग कर तुरंत इलाज करवाएं। इस रोग के उपचार में आइवरमेकटीन इंजेक्शन व ब्युटोक्स का स्प्रे काफी लाभकारी है।

फफूंद द्वारा फैलने वाले रोग

1. ठीकरिया

यह रोग एक साल से कम उम्र के टोरड़ियों में ज्यादा होती है। यह एक छूत की बीमारी है तथा एक बच्चे से दूसरे में बहुत तेजी से फैलती है। इस रोग में त्वचा पर सफेद सूखे धब्बे दिखाई देते हैं जो शुरू में थुई के आस–पास होते हैं व बाद में पूरे शरीर में फैल जाते हैं। कुछ जगहों से खून भी आना शुरू हो जाता है। इस रोग के उपचार के लिए 100 मि.ली. सरसों के तेल मे 6 ग्राम गंधक और 3 ग्राम सेलिसिलिक अम्ल पावडर को अच्छी तरह से मिला लें और इस मिश्रण को संक्रमण वाली जगह पर लगाएं।

चित्र क्र. 1. पॉक्स रोग से ग्रस्त ऊँट के पैरों व मुंह पर फुन्सियाँ

चित्र क्र. 2. मुमड़ी से ग्रसित ऊँट के मुँह व जबड़े पर सूजन

चित्र क्र. 3. फोड़ों में मवाद तथा कीड़े पड़ना

चित्र क्र. 4. खुड़क रोग से ग्रस्त ऊँट के नाक से सफेद स्त्राव

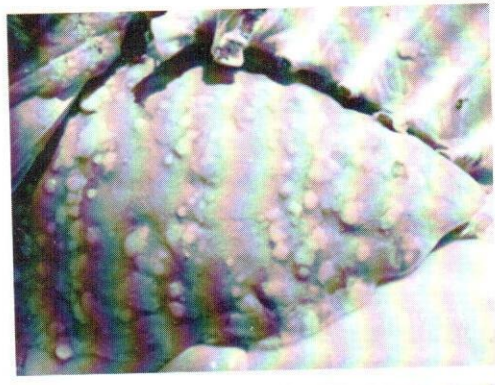

चित्र क्र. 5. क्षय रोग से ग्रसित ऊँट के फेंफड़ों पर पाई गयी कठोर सफेद गाँठे (ग्रेनुलोमा)

ऊँटों की चमड़ी के फफूँद रोग और उनका इलाज

फतेह चन्द टुटेजा, राकेश रंजन एवं ए.के.नागपाल

थार मरूस्थल के तापमान व वर्षा ऋतु की नमी में ऊँटों की चमड़ी के कुछ विशेष फफूँद रोग पनपते हैं। यह रोग ऊँटो से मनुष्यों को भी लग सकते हैं तथा चमड़ी के यह फफूँद रोग आपसी संपर्क से पशुओं में फैलते हैं। यह बीमारी टोलों में रखे गए जानवरों में शुरू में एक–दो पशुओं को होती है, तत्पश्चात यह अन्य स्वस्थ पशुओं में फैलती है। ऐसे में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि बीमारी का पता चलते ही तुरंत प्रभाव से बीमार पशु को अन्य स्वस्थ पशु से अलग कर दें तथा बीमार पशु का इलाज करवाने के पश्चात ही अन्य स्वस्थ पशुओं के साथ जाने दें। ऐसे कुछ रोगों के नाम जो उष्ट्र पालक खुद जानते है ये– ठीकरीया, टाट की बीमारी, दाद इत्यादि हैं।

1. दाद (रिंगवर्म) : यह त्वचा रोग माईक्रोसपोरम फफूँद द्वारा होता है। इसमें सिक्के के आकार के जख्म शरीर के किसी भी भाग में हो जाते हैं। अगर किसी टोले में यह बीमारी हो जाती है तो यह अन्य पशुओं में शीघ्रता से फैलती है। इसलिए बीमारी का पता चलने पर तुरंत ही रोगी पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें व रोगग्रस्त पशु का तुरंत उपचार करें।

2. गठीले दाद (गठीली रिंगवर्म) : यह त्वचा रोग ट्राईकोफाईटोन फफूँद से होता है। इसमें बड़े गठीले जख्म शरीर के किसी भी भाग में हो जाते हैं। अगर किसी टोले में यह बीमारी हो जाती है तो यह भी अन्य पशुओं में फैलती है। इसलिए बीमारी का पता चलने पर तुरंत ही रोगी पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें व रोग ग्रस्त पशु का तुरंत उपचार करें।

3. इपिड्रममिटोफिटोन फ्लोकोस्म : इस फफूँद रोग में ऊँटों की त्वचा पर विशेषकर बच्चों में सूखे तरह के जख्म तेजी से फैलते हैं। अधिक बड़ा जख्म ऐसे लगता है कि जैसे शरीर पर बालों को आग से जला रखा हो। यह बीमारी भी टोले के अन्य पशु में शीघ्रता से फैलती है। यह बीमारी विशेषकर बारिश के समय में देखी गई है।

4. ठीकरिया (स्किन कैनडिडीयेसिस) : यह बीमारी मुख्यत: एक साल से छोटे बच्चों में कैनडिडा अल्बिकानस नामक फफूंद के संक्रमण से होता है। यह एक छूत की बीमारी है और एक बच्चे से दूसरे बच्चे में बहुत तेजी से फैलती है। इस बीमारी में बच्चों के शरीर पर टूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकडे (ठीकरी) के आकार के फफोले हो जाते हैं जो शुरू में थुई के आस–पास दिखते हैं बाद में ये पूरे शरीर में फैल जाते हैं। इसलिए ऊँट पालक इसे 'ठीकरिया' कहते हैं। बाद में इन फफोलों से खून भी आने लगता है। बच्चों के वजन बढ़ोतरी में कमी के साथ–साथ कमजोरी भी आने लगती है।

5. टाट की बीमारी (कुटेनियस ऐलटरनेरियोसिस) : यह बीमारी मुख्यत: एक साल या अधिक उम्र के बच्चों में ऐलटरनेरिया ऐलटरनाटा नामक फफूंद के संक्रमण से होती है। यह भी एक छूत की बीमारी है और एक पशु से दूसरे पशु में बहुत तेजी से फैलती है। इस बीमारी में शरीर पर सफेद व सूखे जख्म पशु के किसी भी भाग की त्वचा पर हो जाते हैं। इस बीमारी के इलाज के लिए पहले जख्म को अच्छी तरह से साफ कर लें व फिर 100 मि. ली. लीटर सरसों के तेल में 6 ग्राम गंधक और 3 ग्राम सेलिसिलिक अम्ल पाउडर डालकर अच्छे से मिला लें और बने इस मिश्रण को संक्रमण वाली जगह पर दूसरे दिन ठीक होने तक लगाएं।

6. स्क्लेरोपसिस ब्रावीकॉलिस : इस फफूँद रोग में ऊँटों की त्वचा पर छोटे–छोटे जख्म विशेषकर बालों के नीचे तेजी से फैलते हैं तथा बालों को काटने पर अनेकों सफेद जख्म दिखाई देने लगते हैं। यह बीमारी भी टोले के अन्य पशुओं में शीघ्रता से फैलती है। यह रोग विशेषकर बारिश के समय में देखा गया है।

ऊँटो के त्वचा रोगों का परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों द्वारा इलाज

जब भी ऊँट बीमार होते हैं तो ऊँट पालक खुद या फिर परंपरागत पशु चिकित्सक की सहायता से, अपनी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों द्वारा ऊँटो की विभिन्न बीमारियों का इलाज करते हैं।

ठीकरिया (स्किन कैनडिडीयेसिस) के उपचार के लिए पहले जख्मों की खुरचन को उतार दें, तत्पश्चात् निम्नलिखित दवाइयाँ लगाएं–

1. साफ पानी में 2.0 प्रतिशत पोटैशियम आयोडाइड का घोल हर दूसरे दिन लगाएं।
2. सरसों के तेल में 6.0 प्रतिशत गंधक का पाऊडर मिला कर हर दूसरे दिन लगाएं।
3. जख्मों को 10.0 प्रतिशत सोडियम थायोसल्फेट के घोल से धोएं। तत्पश्चात सरसों के तेल में 6.0 प्रतिशत गंधक का पाऊडर व 3.0 प्रतिशत सेलिसिलिक अम्ल पावडर मिला कर हर दूसरे दिन लगाएं।

उपचार से पहले उतारी गयी खुरचन को गहरे गड्ढे में डालकर जला दें। ठीकरिया के जख्म कम हो या ज्यादा, दवा को पूरे शरीर पर लगाएं। ऊँट पालक परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों पर अधिक निर्भर करते हैं, इसका मुख्य कारण है उनका खुद का अनुभव, आसानी से परंपरागत चिकित्सक व उपयोग हेतु दवाओं का स्थानीय जगहों पर मिल जाना। फिर भी परंपरागत चिकित्सा पद्धति द्वारा

प्रभावित इलाज न होने पर नजदीकी पशु चिकित्सिक की सलाह लेना प्रभावी होगा। कुछ टोरडियों में ठीकरिया कुछ समय पश्चात खुद ही ठीक हो जाता है, फिर भी उपचार में देरी न करें। देरी करने से जख्म तो बढेंगें ही इसके इलावा ठीकरिया अन्य स्वस्थ टोरडियों में भी फैलेगा।

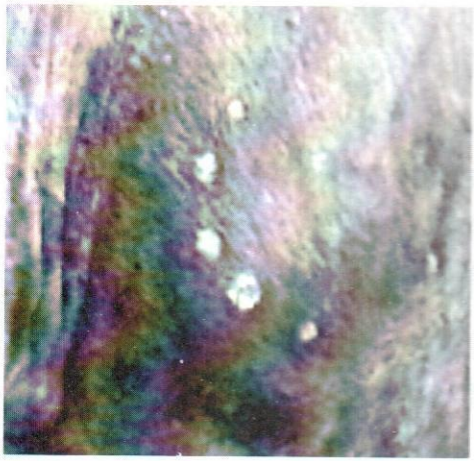

चित्र 1. ऊँट में दाद की बीमारी

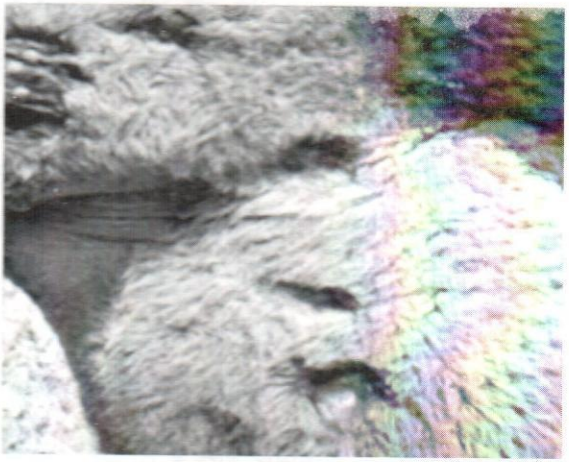

चित्र. 2. ऊँट में गठीले दाद की बीमारी

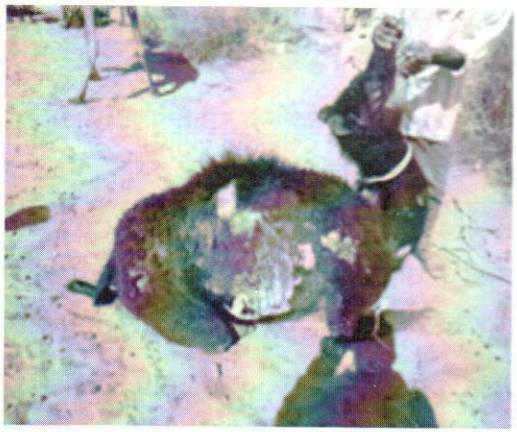

चित्र. 3. ऊँट में इपिड्रममिटोफिटोन लोकोस्म की बीमारी

चित्र 4 : ठीकरिया के शुरूआती जख्म

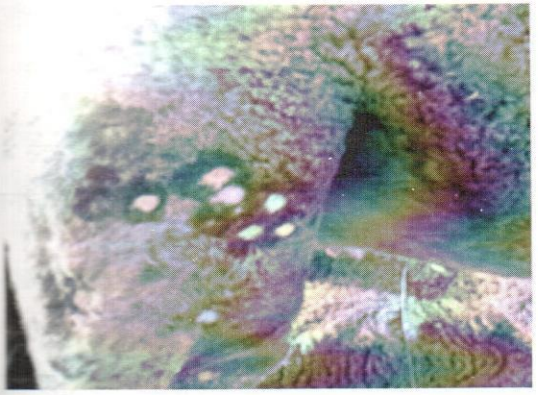

चित्र.5. ऊँट में टाट की बीमारी के जख्म

चित्र. 6. ऊँट में स्क्लेरोपसिस ब्रावीकॉलिस की बीमारी

चित्र 7 : टोरडिए में ठीकरिया के जख्म

चित्र 8 : जख्म की खुरचन साफ करने के बाद

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समुचित देखभाल व बिमारी की अवस्था में उचित इलाज द्वारा किसान भाई अपने ऊँटों को चमड़ी के विभिन्न फफूँद रोगों से मुक्ति दिला सकते हैं।

ऊँट पर परजीवी रोगों का प्रभाव और नियंत्रण

संजय कुमार, राकेश रंजन एवं एस. के. घोरुई

परजीवी रोगों के संक्रमण से ऊँटों में काम करने की क्षमता एवं शारीरिक विकास दर में गिरावट आती है। ऊँट विभिन्न प्रकार के परजीवी रोगों से ग्रस्त हो सकता है, जो निम्नलिखित तीन प्रकार के होते है :

1. रक्त प्रोटोजोआ से फैलने वाले रोग जिसमें ट्रीपैनोसोमीऐसिस/तिबरसा प्रमुख हैं।
2. बाह्य परजीवी से फैलने वाले रोग जिसमें सारकोपटीकोसिस/खाज-खुजली, चिचड़ संक्रमण और बोट्स/मिएसीस शामिल हैं।
3. जठरांत्र अंत: कृमिरोग जिसमें गोलकृमि की बहुत सारी प्रजातियों से फैलने वाले रोग सम्मिलित हैं।

ऊँटों को स्वस्थ रखने के लिए हानिकारक परजीवी रोगों की उचित रोकथाम व नियंत्रण अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं जिससे उष्ट्र पालकों को इनसे होने वाले आर्थिक नुकसान से बचाया जा सके।

1. ऊँट में ट्रीपैनोसोमीऐसिस/तिबरसा रोग

ट्रीपैनोसोमीऐसिस (सर्रा/तिबरसा) जो कि 'ट्रीपैनोसोमा इवान्सी' नामक रक्त प्रोटोजोआ की वजह से होता है, ऊँटों की एक गंभीर बीमारी है। यह ऊँटों में उच्च रुग्णता और मृत्यु दर का एक प्रमुख कारण है। इस रोग का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव क्रोनिक (पुरानी) ट्रीपैनोसोमीऐसिस से होता है जिसके लक्षण गर्भपात, बांझपन, कम दूध उत्पादन, शरीर के वजन में गिरावट और काम करने की क्षमता में कमी है।

रोग का संचरण

ट्रीपैनोसोमा इवान्सी रक्त प्रोटोजोआ पशुओं को काटने वाली मक्खियों की विभिन्न जातियों जैसे टेबनस, स्टोमोक्सीस, लीपेरोसिया, हीमेटोपोटा और हीप्पोबोसका द्वारा यांत्रिक (मेकेनीकल) संचरण विधि से फैलता है। इन मक्खियों के रुक-रुक कर खाने वाला स्वभाव, रोग को एक से दूसरे पशु में संक्रमण में मदद देता है। इन मक्खियों की गतिविधि नमी वाले मौसम के दौरान काफी बढ़ जाती है जो इस परजीवी के प्रसार में सहायक है। अक्सर इस रोग का प्रकोप बरसात के मौसम के दौरान और बाद में अधिक होता है।

रोग के लक्षण

संक्रमित ऊँटों में बीमारी के प्रारंभ में कोई खास लक्षण नहीं दिखता है। हालांकि, पशुओं के रक्त में परजीवी की उपस्थिति के कारण बुखार, कमजोरी और दुबलापन हो सकता है और धीरे–धीरे जानवर की स्थिति खराब हो सकती है। बीमारी के उन्नत चरण में संक्रमित ऊँट के शरीर के निचले भागों में सूजन होता है, शरीर के बाल गिर जाते हैं, त्वचा के नीचे वसा में कमी और कूबड़ लापता होने लगता है। पशुओं की सभी विकसित मांसपेशी अपक्षयित (एट्रोफाइड) हो जाती है। रक्त में पैरासाइटिमिया के वृद्धि के कारण पशुओं में ग्लूकोज की कमी हो जाती है जिससे बेचैनी के लक्षण दिखते हैं जो रेबीज, सांप के काटने या लेप्टोस्पायरोसिस के लक्षण के समान होता है। ऊँटों में यह रोग काफी लंबी अवधि, लगभग तीन से चार साल तक चल सकता है। लंबी अवधि तक रोग ग्रसित होने के कारण अंततः पशु की मौत हो जाती है। पशुओं को आराम देने, अच्छे खानपान और अच्छे प्रबंधन से बीमारी में 20 प्रतिशत तक कमी लायी जा सकती है, लेकिन पशु संक्रमण के वाहक बने रहते हैं।

रोग की पहचान

इस रोग में लक्षणों के आधार पर इसकी पहचान थोड़ी मुश्किल है। रक्त के नमूनों की सूक्ष्मदर्शी जाँच द्वारा इसकी पहचान की जा सकती है, पर यह भी कभी–कभी गलत परिणाम दे सकता है। संदिग्ध ऊँटों के रक्त को चूहों के शरीर में डालकर जाँच करने से संक्रमण का पता लगाना आसान हो जाता है। इसके अलावा आधुनिक प्रयोगशाला जांचों से भी इस रोग का पता लगाया जा सकता है पर इनका हर जगह उपलब्ध न होना एक बड़ी बाधा है।

रोग उपचार व नियंत्रण

तिबरसा रोग के उपचार एवम् रोकथाम के लिये ऊँटों में आमतौर पर निम्नलिखित दवाइयाँ इस्तेमाल की जाती हैं :

क) क्यूनापारामीन डाईमिथाइल सल्फेट के घोल का 3.0–5.0 मिग्रा/किग्रा शरीर भार के अनुसार त्वचा में इंजेक्शन।

ख) नागानोल (सुरामीन, मोरानील) के 0.4–0.6 ग्राम/45 किग्रा शरीर भार के अनुसार नसों में।

ग) क्यूनापारामीन डाईमिथाइल सल्फेट और क्यूनापारामीन क्लोराइड को 5 मिलीग्राम प्रति किग्रा शरीर भार के अनुसार त्वचा में।

घ) आइसोमेटामीडियम क्लोराइड हायडरोक्लोरेट का उपयोग 0.5-1 मिलीग्राम/किग्रा शरीर भार के अनुसार नसों में या मांस में की जाती है। परन्तु इसके उपयोग की सलाह अधिक प्रभावी दवाओं के अभाव में की जाती है।

रोगनिरोधी के रूप में क्यूनापारामीन डायलमीथाइल सलफेट (पानी में घुलनशील) और क्यूनापारामीन क्लोराइड (पानी में अघुलनशील) का 16.7 प्रतिशत जलीय घोल को मानसून के बाद की अवधि (सितंबर-अक्टूबर के महीने) में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस बीमारी को फैलाने वाली मक्खियों के विभिन्न प्रजातियों के नियंत्रण से भी तिबसा रोग की रोकथाम में मदद मिल सकती है। अभी तक इस परजीवी के खिलाफ किसी भी टीके का विकास नहीं हो पाया है।

2. बाह्य परजीवी से फैलने वाले रोग

(क) ऊँटों में खाज-खुजली की बीमारी

खाज-खुजली ऊँटों का सबसे आम परजीवी त्वचा रोगों में से एक हैं जो बाह्य-परजीवी सारकोपटिस स्काबिएई माइट के संक्रमण द्वारा होता है। यह रोग जानवरों के खराब प्रबंधन के कारण ज्यादा होता है। ऊँटों में खाज-खुजली का संक्रमण आम तौर पर सर्दियों के अंत में या बसंत के शुरुआत में होता है। यह निर्बल व कमजोर ऊँटों में कुपोषण के कारण तथा उन्हें भीड़-भाड़ में रखने के कारण भी तेजी से फैलता है। सर्वेक्षण के आंकड़ों के मुताबिक, इस बीमारी की रुग्णता किसानों द्वारा अपने स्वयं के घरेलू उद्देश्यों हेतु एक या दो ऊँटों को अलग रखने की तुलना में प्रवासी ऊँटों के झुंड में ज्यादा (लगभग 50 प्रतिशत) पाया जाता है। यह सभी आयु वर्ग के जानवर को प्रभावित करता है। ठंडे तापमान और उच्च सापेक्ष आर्द्रता सारकोपटिस मेंज के संक्रमण को बढ़ावा देता है और इसके अस्तित्व को बनाए रखता है। ऊँटों के शरीर पर मेंज का संक्रमण आम तौर पर शरीर के कम बालों वाले भागों जैसे चेहरे, गर्दन, कांख और किनारों पर अधिक होता है, हालांकि, संक्रमण पूरे शरीर में भी फैल सकता है। सारकोपटिस स्काबिएई माइट द्वारा जानवरों की त्वचा में छोटा छिद्र बनाने और खाने वाली गतिविधि के कारण गहन खुजली, सूजन, प्रभावित हिस्सों से बालों का नुकसान और सूखे पीब की पपड़ी बन जाती है। तीव्र खुजली होने के कारण त्वचा में खरोंच आ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित त्वचा सतहों पर स्त्राव और खून का निकलना शुरु हो जाता है।

ऊँट के शरीर के अलग-अलग प्रभावित भागों से त्वचा की गहरी खुरचन लेकर उसे 10 प्रतिशत पोटैशियम हाइड्रोक्साइड के घोल में उबाले जाने पर माइट्स, उनके अंडे और मल, सूक्ष्म परीक्षण के तहत दिखाई दे सकता है।

बीमारी को फैलने से रोकने के लिये ऊँटों के झुंड में से संक्रमित ऊँट को तुरंत अलग कर लेना चाहिए जिससे वह अन्य स्वस्थ पशुओं को प्रभावित नहीं कर सके। प्रभावित ऊँटों को शरीर को रगड़ने वाले स्थानों यथा दीवारों, पेड़, आदि के आसपास नहीं छोड़ना चाहिए। स्वस्थ और पीड़ित जानवरों के आपस में मिश्रण को रोकने के लिए जानवरों के चरने और घुमने वाले क्षेत्रों को तुरंत बदला जाना चाहिए। जैसा स्पष्ट है कि माइट्स शरीर पर काफी सतही रूप में रहता है, इसका नियंत्रण नियमित रूप से पशुओं के साफ–सफाई द्वारा किया जा सकता है। पशु के आवास क्षेत्रों में कीटनाशक औषधि का वर्ष में कम से कम एक बार छिड़काव संक्रमण की संभावना को कम कर देता है। बीमारी से ठीक हो गये जानवरों में दुबारा संक्रमण रोकने के लिए एक ही समय में सभी ऊँटों का इलाज करना चाहिए। ऊँटों की देखभाल करने वाले व्यक्तियों को हमेशा अच्छी तरह से साबुन और अन्य कीटाणुनाशक से अपने हाथों को धोना चाहिए। कीटनाशक औषधि जैसे डियाजीनोन, अमितराज, डेल्टामेथ्रिन और फेनवालीरेट का इस्तेमाल कर इस रोग का इलाज किया जा सकता है। ऊँटों में माइट्स के इलाज में एवरमेक्टिन नामक औषधि के इस्तेमाल से भी उत्कृष्ट परिणाम मिलता है।

(ख) ऊँटों में चींचड़ का प्रकोप

ऊँटों में चींचड का प्रकोप त्वचा के ऊपरी सतह पर होता है और इससे काम करने की क्षमता में कमी, दूध के उत्पादन में कमी और युवा पशुओं में विकास दर प्रभावित होता है। चींचड ऊँट के शरीर से बड़ी मात्रा में खून चूस लेता है जिससे आम तौर पर त्वचा में लगातार जलन पैदा होती है। परिणामस्वरूप जानवर शरीर के प्रभावित भाग को रगड़ने के लिए मजबूर हो जाता है। चींचड जब जानवर के आंखों या पलकों के आसपास होता है तब वे अपने आंखों को पेड़, दीवार या अन्य वस्तुओं पर रगड़ते हैं जिससे पलकों पर सूजन आ जाती है और आंखों को नुकसान पहुंचता है। अक्सर जानवरों में कंजक्टिवाइटिस/कंजक्टिवा में सूजन हो जाता है। कीटनाशक औषधि जैसे डियाजीनोन, अमितराज, डेल्टामेथ्रिन और फेनवालीरेट का छिड़काव चींचड के रोकथाम में प्रभावी होता है।

(ग) ऊँटों के नाक में बोट्स/मीयासीस

यह बीमारी ऊँटों के नाक में सेफेलोपीना टीटीलेटर नामक मक्खी के संक्रमण के कारण है। आम तौर पर मक्खी के मैगोट से ऊँटों पर गंभीर प्रभाव नहीं होता है लेकिन वयस्क मक्खियों की गतिविधि और उनके नाक में अंडे देने से जानवरों में चिड़चिड़ापन होता है। जानवरों में बेचैनी, लगातार छींकना और खर्राटा लेना बीमारी के अन्य लक्षण हैं। इस बीमारी में जानवरों के नाक की गुहा में और बलगम में लार्वा उलझे रहते हैं जिससे नाक की गुहा में जलन होती है और बैक्टीरियल संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। एवरमेक्टिन के इस्तेमाल से इस बीमारी को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

3. ऊँट में अंत: कृमिरोग

जठरांत्र कृमिरोग, ऊँटों के गंभीर परजीवी रोगों में से एक है जो गोल कृमि की बहुत सारी प्रजातियों से होता है। छोटे पशुओं के विपरीत वयस्क ऊँटों में गोल कृमि का संक्रमण लक्षणहीन होता है तथा जानवरों में सामान्यतः सुस्ती के लक्षण, छिटपुट दस्त, कब्ज, दुर्बलता और एनीमिया हो सकता है। गोल कृमि संक्रमण से शरीर में पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा होती है जिससे जानवरों के वजन वृद्धि में कमी, ऊर्जा और काम करने की क्षमता में गिरावट आती है। जुलाई से अक्टूबर महीने की अवधि पेट के कीड़े के संक्रमण के लिए उपयुक्त पाई गई है। मानसून के बाद विशेषकर अगस्त से सितंबर के महीने में जठरांत्र कृमि रोग का अधिकतम संक्रमण पाया जाता है।

विभिन्न जानवरों की प्रजातियों में पेट के कीड़े का संक्रमण मुख्य रूप से भू–कृषि जलवायु की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। बरसात और इसके बाद के मौसम परजीवी की प्रजननशीलता और चारागाह को परजीवी से दूषित बनाए रखने के लिए उपयुक्त पाया गया है। इस गर्म शुष्क क्षेत्र में भेड़ और बकरी के साथ ऊँट की मौजूदगी जानवरों में गोल कृमि के व्यापक संक्रमण में सहायक है। हालांकि ऊँटों का अच्छा प्रबंधन एवं समय समय पर परजीवी नाशक दवा के प्रयोग से उन्हें पेट के परजीवियों से मुक्त रखा जा सकता है।

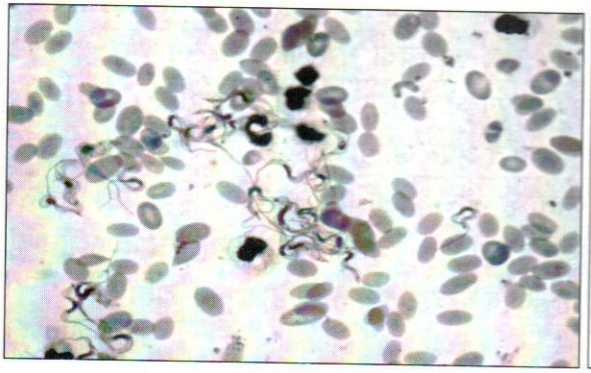

ऊंट के खून में तिबर्सा रोग फैलाने वाले ट्रीपैनोसोमा इवान्सी प्रोटोजोआ

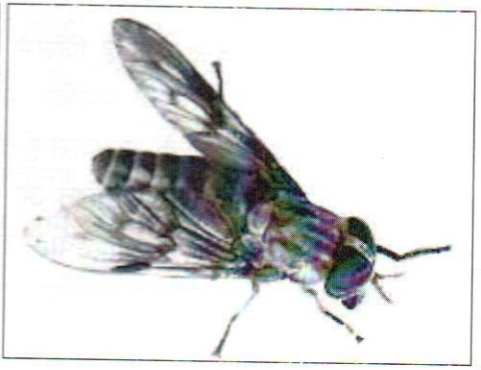

ऊंटों में ट्रीपैनोसोमा इवान्सी प्रोटोजोआ के प्रसार में सहायक मक्खि

ऊँटों का वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन

अशोक कुमार नागपाल एवं नेमीचंद बारासा

ऊँटों को स्वस्थ रखने में आहार का महत्पवूर्ण योगदान है। ऊँट के रख–रखाव/पालन पोषण में चारे/दाने का 80 प्रतिशत से अधिक खर्च होता है, इसलिए जरूरी है कि ऊँट को उचित मात्रा तथा गुणवता वाला आहार दें। चारे की गुणवता से अर्थ है कि ऊँट को आहार में, उचित मात्रा में ऊर्जा प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज तत्व उपलब्ध हों। उचित मात्रा से अर्थ है कि उसको भरपेट आहार मिले। कम मात्रा तथा निम्न गुणवता वाले आहार से ऊँट जहां कमजोर और देर से वयस्क होगा, वहीं ज्यादा मात्रा तथा गुणवता वाले आहार से शरीर में ज्यादा वसा जमा होगी, पोषक तत्वों का शरीर में इस्तेमाल नहीं होगा तथा ऊँट जल्दी थकेगा। उचित मात्रा तथा गुणवता वाले आहार से ऊँट का शरीर स्वस्थ रहेगा और अच्छा उत्पादन देगा।

ग्याभिन ऊँटनी का आहार

ग्याभिन ऊँटनी के पोषण का तीन स्तर पर ध्यान देना चाहिए, एक उसके अनुरक्षण हेतु, दूसरा पेट में पल रहे भ्रूण हेतु और तीसरा ब्यांत के बाद दूध उत्पादन के लिए अपने शरीर में पोषक तत्वों को जमा करने हेतु। ऊँटनी की इस अवस्था में दो प्राणियों का विकास एवं पोषण होता है, एक स्वयं का और दूसरा उसके पेट में पल रहे बच्चे का। इसलिए उसके पोषण पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट का गर्भकाल अलग–अलग होता है। ऊँटनी के गर्भकाल की अवधि 389 दिन यानि ग्यारह माह है। ऊँटनी के गर्भाशय में पल रहे बच्चे का देह विकास पहले 8 से 9 माह में धीमा होता है पर भ्रूण का 70 प्रतिशत देह विकास गर्भ के आखिरी 3 से 4 माह में होता है। इसलिए गर्भ काल में ऊँटनी को विशेष पोषण देना चाहिए और उसे ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन्स से भरपूर सुपाचक और संतुलित आहार देना ठीक रहता है। गर्भवती ऊँटनी के अपर्याप्त पोषण अथवा कुपोषण से कमजोर टोरड़िया (बछड़ा) पैदा होगा और दूध उत्पादन भी कम होगा। विटामिन 'ए' की कमी से अक्सर कमजोर या अंधे बछड़ों के जन्म या गर्भपात के परिणाम मिलते हैं।

गर्भावस्था के आखिरी माह में ऊँटनी को हल्का घुमने का व्यायाम दिया जाना चाहिए और आखिरी 3 से 5 दिनों के लिए इनकी चराई बंद कर बाड़े में रखना चाहिए। गर्भकाल के नवें और दसवें माह के दौरान इन्हें 20 प्रतिशत अतिरिक्त पोषक तत्व और ब्यांत तक इसके पश्चात 50 प्रतिशत अतिरिक्त पोषक तत्व देने चाहिए। गर्भावस्था के अंतिम चार महीनों के दौरान ऊँटनी की देहभार वृद्धि उसके पोषण के स्तर पर निर्भर करती है। गर्भवती ऊँटनियों को 9.5 प्रतिशत प्रोटीन और 50 प्रतिशत कुल पाचक तत्व युक्त आहार दिया जाना चाहिए।

टोरडियों का आहार

इस अवस्था में ऊँट के शरीर की वृद्धि दर सबसे अधिक होती है। यदि टोरडिए को इस अवस्था में अच्छा संतुलित आहार नहीं दिया जाता तो है वह कमजोर और देरी से वयस्क होने के साथ बीमार भी जल्दी होगा। ज्यादा आहार देना भी ठीक नहीं है क्योंकि शरीर में पोषक तत्वों का सही उपयोग नहीं होगा और उसमें चर्बी ज्यादा जमेगी। टोरडिए को जन्म लेने के 1 से 2 घंटों के भीतर खींस (ऊँटनी का पहला दूध) पिलाएं जिसमें पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा के साथ एंटीबॉडीज अथवा इम्यूनोग्लोबुलिन्स यानि बीमारी रोधक तत्व होते हैं। खींस में 75-80 प्रतिशत पानी, 20-25 प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ, 0.1-0.4 प्रतिशत वसा, 16-20 प्रतिशत प्रोटीन, 4-5 प्रतिशत लेक्टोज, 1.5-2.8 प्रतिशत कुल खनिज पाए जाते हैं। एंटीबाडीज अथवा इम्यूनोग्लोबुलिन्स से टोरडियों का कई बीमारियों से बचाव होता है। खींस पेट से पहला मल निकालने में भी सहायक होता है। यदि टोरडिए की माँ उसे दूध न पिला सके तो दूसरी ऊँटनी का दूध बोतल से दें। टोरडिए को कम से कम तीन माह तक ऊँटनी का दूध दें ताकि उसके शरीर का उत्तम विकास हो। 10-15 दिनों बाद उनको मादा के साथ चरने के लिए, हरा चारा और दाना यानि सान्द्र मिश्रण दें जिससे उसके पेट में उपस्थित रूमन का समुचित विकास हो। धीरे-धीरे दूध की मात्रा घटाते जाएं और चारे/दाने की मात्रा बढ़ाते जाएं। सामान्यत: टोरडिए को वयस्क होने में 5 साल तक का लंबा समय लगता है पर वैज्ञानिक पोषण पद्धति से इसे 3 साल में वयस्क किया जा सकता है। पैदा होने के समय (टोरडिए) का वजन 30-40 किलोग्राम का होता है जो तीन माह पर 100 किलोग्राम तक पहुँच जाता है। टोरडिए को 10 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन तथा 62 प्रतिशत पाचकता वाले सन्तुलित गोलीदार दाने जिसमें चारे तथा कृषि उत्पादों के 50:50 अनुपात था, देने पर देह भार में वृद्धि 650 ग्राम प्रति दिन से भी अधिक थी और जल्दी वयस्क हुए। सन्तुलित गोलीदार दाने के भी फायदे फीड ब्लॉक से अधिक हैं क्योंकि इसमें चारा-दाना बेकार नहीं जाता। अच्छा आहार देने से टोरडियों का देह भार एक साल पर 250 किलोग्राम, दो वर्ष पर 400 किलोग्राम तथा 3 साल पर 500 किलोग्राम से ऊपर हो सकता है। तीन वर्ष की आयु में ऐसे टोरडिए से कार्य लिया जा सकता है। इस देह भार पर इसके शरीर का कद और बनावट सही होता है। मादा टोरडिये को ग्याभिन कराया जा सकता है, बच्चा पैदा करने में दिक्कत नहीं होती और दूध की मात्र भी अच्छी मिलती है।

तालिका 1 - ऊँटों में देह भार, वृद्धि दर एवं आहार की आवश्यकता

समय	देह भार (किलोग्राम)	वृद्धि दर ग्राम/दिन	शुष्क पदार्थ (किलो ग्राम)
जन्म	40	-	-
3 माह	100	650	
एक साल	250	400	5 किलो
दो साल	400	400	7-8 किलो
तीन साल	500 से ऊपर-550	400	9-10 किलो

ऊँटनी: एक दुधारू पशु के रूप में

ऊँटनियाँ सामान्यत: दिसम्बर से मार्च तक ब्याती हैं और लगभग 12-18 माह तक आसानी से दूध देती हैं। एक अच्छी ऊँटनी ठीक आहार देने से 8 से 10 लीटर दूध आसानी से दे देती है। ऊँटनी का दूध न केवल पौष्टिक और सुपाच्य है बल्कि इसमें कई रोगों जैसे तपेदिक, मधुमेह, कैंसर की रोकथाम वाले गुण भी विद्यमान हैं। ऊँटनी के दूध में 88-90 प्रतिशत पानी, 10-12 प्रतिशत ठोस पदार्थ, 2-3 प्रतिशत वसा, 3.5-4.5 प्रतिशत प्रोटीन, 3.5-4.5 प्रतिशत लेक्टोज और 0.8-0.9 प्रतिशत खनिज पाए जाते है। ऊँटनी का दूध उत्पादन उसकी नस्ल, ब्यांत, दुग्ध उत्पादन अवस्था तथा आहार पर निर्भर है। दुधारू ऊँटनियों के पोषण प्रबन्ध में तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए- देहभार, दुग्ध उत्पादन तथा आहार। अनुरक्षण स्तर पर दुधारू ऊँटनी को अनुमानत: 1.25 से 1.50 किलोग्राम शुष्क आहार प्रति 100 किलोग्राम देह भार की आवश्यकता होती है जो कि गाय, भैंस, भेड़ एवं बकरी की अपेक्षा कम है। पहली तथा दूसरी ब्यांत में देहभार वृद्धि हेतु 10 से 20 प्रतिशत अतिरिक्त अनुरक्षण पोषण की आवश्यकता होती है। दुधारू ऊँटनियों को जंगल, चरागाहों में चराने हेतु भेजने से अतिरिक्त ऊर्जा व्यय होने पर आवश्यकतानुसार 20 प्रतिशत अधिक अनुरक्षण पोषण देना चाहिए। दुधारू ऊँटनियों को दूध की वसा मात्रा, अन्य तत्व तथा मात्रा के मुताबिक पोषण देना आवश्यक है। इसके दूध में वसा, प्रोटीन, लेक्टोज तथा खनिज तत्व मौजूद रहते हैं जिनकी पूर्ति आहार से होनी चाहिए। दुधारू पशु आहार के प्रोटीन को बहुत क्षमता से दूध प्रोटीन में परिवर्तित कर लेते हैं। दूध की प्रोटीन की आपूर्ति को 1.25 गुणा आहार प्रोटीन द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। दुधारू पशु आहार की शर्करा को दूध की वसा में बदलने में सक्षम हैं पर उनके लिए आहार की वसा को दूध वसा में परिवर्तित करना आसान है। इसलिए आहार में हरा चारा, सांद्र मिश्रण द्वारा 3 प्रतिशत वसा की मात्रा रखना ठीक है। दुधारू ऊँटनियाँ प्रारम्भिक अवस्था में अधिक दूध उत्पादन से तनाव में रहती हैं क्योंकि आहार द्वारा उतनी पोषक तत्वों की आपूर्ति नहीं होती और शरीर में उपलब्ध ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन का दूध में स्राव होने से उनके देहभार में कमी आ जाती है। दुधारू ऊँटनियों में पोषक तत्व बढ़ाकर शुष्क पदार्थ ग्रहण को कम से कम 2.25 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम देहभार होना चाहिए ताकि देहभार में गिरावट न हो। एक 500 किलोग्राम देहभार दुधारू ऊँटनी को 2.25 प्रतिशत शुष्क पदार्थ, 6.0 प्रतिशत पचनीय कच्ची प्रोटीन, 60.0 प्रतिशत कुल पाचक तत्व वाला आहार की प्रतिदिन की आवश्कता होती है ताकि देहभार में गिरावट न हो।

नर ऊँट का आहार

नर ऊँट में प्रजनन अन्य पशुओं गाय, भैंस, भेड़, बकरी से भिन्न है। नर ऊँट में प्रजनन के लक्षण और पोषण प्रबंधन भी अन्य पशुओं से भिन्न होते हैं। ऊँट का प्रजनन काल सर्दी की ऋतु के

तालिका 2–ऊँटों के कुछ सन्तुलित आहारों (स अ) की भौतिकी रचना एवं पोषण मान

विवरण	सअ 1	सअ 2	सअ 3	सअ 4	सअ 5
क. भौतिकी रचना					
मूंगफली चारा	32	–	–	–	–
मोठ चारा	–	47	27	35.3	35.3
गेंहू का भूसा	30	40	40	30	30
खेजड़ी	25	–	25	25	25
बुई	–	–	20	–	–
गुड़	4	4	4	4	4
चोकर	3	3	3	–	–
ग्वार चूरी	4	5	5	5	5
खनिज मिश्रण	0.2	0.2	0.2	0.2	0.2
साधारण लवण	0.8	0.8	0.8	0.5	0.5

ख. पोषण मान					
पशु	**टोरडिए बछड़े**	**टोरडिए बछड़े**	**टोरडिए बछड़े**	**टोरडिए बछड़े**	**दुधारु ऊँटनियां**
आयु (वर्ष)	3.0	2.5	2.5	0.25–0.5	1.0
कच्ची प्रोटीन (प्रतिशत)	11.02	9.85	10.26	11.59	11.59
पाचक कच्ची प्रोटीन (प्रतिशत)	6.54	6.04	6.70	9.30	7.16
कुल पाचक तत्व	59.20	55.73	56.36	72.10	60.98
शुष्क पदार्थ अन्तर्ग्रहण (किलो/दिन)	7.37	6.46	5.66	3.57	15.97
शुष्क पदार्थ अन्तर्ग्रहण (प्रतिशत)	1.82	1.81	1.60	2.40	3.06
शारीरिक भार वृद्धि (ग्राम/दिन)	432	268	217	587	27.20

साथ शुरू होता है और सर्दी समाप्ति पर ही समाप्त हो जाता है। सर्दियों में नर ऊँट 'मस्ती' यानी 'झूंट' में आता है, खाना पीना छोड़ देता है जिससे इसके वजन में गिरावट आ जाती है। यह देखा गया कि इस अवस्था में ऊँट के खाने में में 50 प्रतिशत की गिरावट के साथ 16 प्रतिशत देहभार की कमी होती है। नर ऊँटों के पोषण, देहभार और प्रजनन शक्ति को बनाए रखने के लिए नर ऊँटों की ऐसी अवस्था में चारे के साथ प्रतिदिन 500 ग्राम गुड़ व 250 ग्राम मूंगफली तेल दें या 2-3 कि.ग्राम रातिब मिश्रण दें, ताकि उसका दैनिक शुष्क पदार्थ ग्रहण कम से कम 1.25 किलोग्राम/100 किलोग्राम देहभार बना रहे।

ऊँट से कार्य उत्पादन

सामान्यता ऊँट को 2 से 2.5 वर्ष की आयु से ही काम में लगा दिया जाता है और 5 वर्ष की आयु में वह पूर्ण क्षमता प्राप्त कर लेता है। दौड़ वाले ऊँटों को तुरंत ऊर्जा देने वाले आहार की आवश्यकता होती है। एक अनुमान के अनुसार 500 किलोग्राम देहभार वाले ऊँट को अपने अनुरक्षण हेतु प्रतिदिन 54 मेगा जूल यानि 12.90 मेगा कैलोरी और प्रति एक घंटे कार्य हेतु 8.2 मेगा जूल यानि 2.28 मेगा कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

सन्तुलित आहार: बेहतर उष्ट्र स्वास्थ्य व उत्पादन का एकमात्र विकल्प

कोई भी एकल चारा पोषकता के सभी तत्व विद्यमान नहीं होने के कारण संपूर्ण आहार नहीं है। यह जब पशुओं को दिया जाता है तो कुपोषण/असंतुलित पोषण को उत्पन्न करता है। ऊँटों को सन्तुलित आहार दिया जाना चाहिए है जिससे पोषक तत्वों की आपूर्ति संतुलित अनुपात और मात्रा में प्राप्त हो सके। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में ग्वार फलगटी, मोठ चारा, मूँगफली चारा, चने की खार, खेजड़ी, अरडु, नीम, बुई एवं गेहूँ भूसा के उचित उपयोग करने हेतु विभिन्न चारों को कृषि उद्योगीय सह-उत्पादों, शीरा, खनिज मिश्रण और नमक के मिश्रित रूप में प्रयोग कर कई संतुलित आहार बनाए गए। ये सन्तुलित आहार की ईटें, पशुओं को ऊर्जा एवं प्रोटीन तथा आवश्यक खनिज तत्वों की आपूर्ति प्रदान करती है। सन्तुलित आहार की ईटें रूमन किण्वन को स्थिर व रूमन सूक्ष्म जीवों के स्तर को बनाये रखता है जिससे पेट की अम्लता/क्षारीयता व आमाशय सम्बन्धी व्याधियॉ नहीं होती। सन्तुलित आहार की ईटें ऊँटों को चारा खिलाने का एक आधुनिक चलन है चूंकि -

- सन्तुलित आहार को खुले चारे के रुप में देने से बेशक हम अपनी तरफ से सभी तत्व संतुलित मात्रा तथा अनुपात में देते हैं पर क्योंकि ऊँट चयन करके खाने में माहिर होने से पसंद का चारा खाता है तथा नापसंद को छोड़ देता है, उसे सही पोषण नहीं मिल पाता। सन्तुलित आहार को भेली या ईटों के रुप मे देने से ऊँटों द्वारा पसंद का चारा खाना तथा नापसंद को छोड़ देना संभव नहीं होता।

- ये आहार ईंटें स्थान भी कम घेरती हैं तथा इनके परिवहन में भी कम खर्च आता है।
- ईंटें चारे एवं दाने का परस्पर मिश्रिण हैं। इनमें ऊर्जा, प्रोटीन की सुलभता से उष्ट्र आहार के प्रत्येक कण की उपयोगिता में वृद्धि होती है।
- 5 किलो की 3 ईंटें एक ऊँट का एक दिन का सम्पूर्ण आहार है। इनको तोड़ कर खिलाने की जरुरत नहीं है।

निष्कर्षत: अन्य पशुओं की तरह ऊँट को भी उचित रख रखाव व पोषण प्रबंधन की आवश्यकता रहती है। बदलते परिदृश्य में घटते चरागाह व अन्य आहार आदि समस्याओं के कारण इस पशु की संख्या व उपयोगिता दोनों सीमित हुई हैं। ऐसे में इस पशु का वैज्ञानिक ढंग से पोषण प्रबंधन किया जाना नितांत आवश्यक प्रतीत होता है। वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन ऊँट की कार्य उत्पादन क्षमता में भी आशातीत वृद्धि करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

ऊँट के नवजात बच्चे एवं माँ की देखभाल

मुहम्मद मतीन अंसारी, सुमंत व्यास एवं राकेश रंजन

ऊँटों में गर्भकाल अन्य पशुओं की तुलना में बहुत लम्बे समय का है। एक ऊँटनी दो साल में एक बच्चे को जन्म दे सकती है और मादा सामान्य तौर पर अपने जीवन काल में अधिकतम सात से आठ बच्चे दे सकती है। यह प्रजनन की बहुत ही धीमी दर है, इसलिए यह आवश्यक है कि गर्भवती मादा एवं बच्चे का सही रख–रखाव करें जिससे बच्चा स्वस्थ पैदा हो और और माँ भी स्वस्थ रहे।

ऊँटों में प्रसव के दौरान निम्नलिखित सामान्य लक्षण देखने को मिलते हैं –

- ऊँटनी की योनि में सूजन हो जाती है और थन बड़े–बड़े हो जाते हैं।
- ऊँटनी को बेचैनी होने लगती है, बार–बार उठती–बैठती है और पेशाब करती है।
- ऊँटनी एकान्त ढूँढती है और चारा कम खाती है।

प्रसव में लगभग आधे घंटे का समय लगता है और बच्चा लगभग 30 मिनट में बाहर आ जाता है। ऊँटनी एक बार में एक ही बच्चे को जन्म देती है। ऊँटनी खड़े–खड़े एवं बैठ कर बच्चे को जन्म दे सकती है, लेकिन आम तौर पर बैठकर ही बच्चा देती है। प्रसव के समय बच्चे के आगे के पैर पहले दिखाई देते हैं फिर पीछे से सिर आता दिखता है। कई नवजात ऊँट जन्म से पहले या जन्म के बाद जल्द ही मर जाते हैं क्योंकि माँ को गर्भावस्था के दौरान अच्छी तरह से नहीं खिलाया गया हो या कुछ ऊँट मालिक टोरडियों को कोलोस्ट्रम या खींस (जन्म के तुरंत बाद निकला हुआ दूध) नहीं देते हैं। ऊँट के नवजात बच्चों के पालन–पोषण में निम्नलिखित उपयोगी बातों का ध्यान रखकर बच्चों की मृत्यु दर कम की जा सकती है।

- ऊँट के भ्रूण की वृद्धि, विकास एवं माँ के स्वास्थ्य के लिए ग्याभिन ऊँटनी को उपयुक्त आहार देना चाहिए।
- ग्याभिन ऊँटनी को रहने के लिए पर्याप्त जगह देनी चाहिए ताकि वह आराम से घूम सके तथा गर्भ के तनाव को कम कर सके।
- ग्याभिन ऊँटनी के रहने की जगह को साफ रखना चाहिए, विशेष रूप से खाने की जगह एवं पीने के लिए साफ पानी देनी चाहिए।
- प्रसव के अनुमानित समय से लगभग दस पन्द्रह दिनों पूर्व ऊँटनी का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

- प्रसव खड़ी हुई एवं बैठी हुई अवस्था में हो सकता है लेकिन बैठी हुई अवस्था में ग्याभिन ऊँटनी को आसानी होती है। प्रसव की प्रक्रिया में अधिक समय लगने पर पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।
- बच्चे को बाहर निकालने में मदद कर रहे व्यक्ति को अपने हाथ साबुन से साफ कर लेने चाहिए। अगर अंगूठी या हाथ में और कुछ पहन रखा है तो पहले निकाल दें। अगर नाखून बढ़े हुए हो तो काट लें अन्यथा बच्चे या माँ को चोट लग सकती है।
- आम तौर पर जेर (झिल्ली) एक घंटे में बाहर निकल जाती है। यदि 12 घंटे के बाद भी जेर पूरी बाहर न आए तो पशु चिकित्सक से सलाह लें अन्यथा बच्चेदानी में संक्रमण फैल सकता है।
- माँ (ऊँटनी) को बच्चे से मिलने में बाधा नहीं डालनी चाहिए, उसे बच्चे को सूंघने देना चाहिए ताकि वह अपने बच्चे को पहचान सके एवं दूध पिला सके।
- जन्म के बाद माँ चार से पांच दिनों के लिए कोलोस्ट्रम वाला दूध देती है। ऊँट के बच्चे को रोगों के खिलाफ रक्षा करने के लिए अपनी माँ से कोलोस्ट्रम (दूध) लेना अति आवश्यक होता है। अगर बच्चे को कोलोस्ट्रम (दूध) लेने से रोका गया तो उसमें संक्रमण एवं मौत भी हो सकती है।
- बच्चे को ठंडी या नमी वाले स्थान पर नहीं रखना चाहिए अन्यथा उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है।
- बच्चे की गर्भ–नाभि टिन्चर आयोडीन या सेवलोन से साफ कर लेनी चाहिए अन्यथा नाभि में संक्रमण फैल सकता है।
- लगभग 2 माह तक केवल माँ का दूध ही देना चाहिए। इसके बाद धीमे–धीमे करके चारा व दाना दे सकते हैं।
- यह महत्वपूर्ण है कि ऊँट के बच्चों में पेट की संरचना, वयस्क ऊँट से अलग होती है, जैसे कि वयस्क में 3 विकसित भाग होते हैं लेकिन बच्चों मे सिर्फ पेट का एक ही भाग विकसित होता है जिसे एबोमेजम कहते हैं। लगभग दो माह के बाद दूध के साथ–साथ थोड़ा चारा भी देने से बच्चे में पेट के दूसरे भाग का भी तेजी से विकास होने लगता है और यदि चारा नहीं देंगे तो विकास धीमा पड़ जाएगा और शारीरिक वृद्धि दर धीमी हो जाएगी।

किसान भाई उक्त बिन्दुओं में बताई गई बातों का पालन करके ऊँट में नवजात मृत्यु दर को कम कर सकते हैं और ऊँट पालन को और लाभदायक बना सकते हैं।

उष्ट्र दुग्ध उत्पादन व प्रसंस्करण की व्यावसायिक संभावनाएँ

देवेन्द्र कुमार, राघवेन्द्र सिंह, राकेश कुमार पूनियां एवं एन. वी. पाटिल

उष्ट्र से प्राप्त होने वाले विभिन्न उत्पादों में से दुग्ध एक महत्वपूर्ण उत्पाद है। इसमें सभी पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं और इसे नवजात हेतु पूर्ण आहार माना जाता है। उष्ट्र की दैनिक दुग्ध उत्पादन क्षमता औसतन 2 से 10 लीटर होती है। ऊँटनी बच्चे देने के बाद 14-16 माह तक दूध दे सकती है। इसके दूध का रंग सफेद व स्वाद हल्का नमकीन होता है। ऊँटनी के दूध का सेवन कई बीमारियों में फायदेमंद पाया गया है, जैसे पीलिया, यकृत-शोथ, पेट का अल्सर, बवासीर इत्यादि। दूध में इंसुलिन/ इंसुलिन-जैसी प्रोटीन पाई जाती है जो कि मधुमेह रोगियों के लिये बहुत ही लाभदायक पाई गई है। ऊँटनी के दूध को विभिन्न प्रकार के क्षय रोगों में भी उपयोगी पाया गया है।

ऊँटनी के दूध का मूल्य संवर्धन करके इसकी उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है। मूल्य संवर्धन से तैयार उत्पादों को लंबे समय तक रख रखाव एवं परिवहन करने में आसानी होती है। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर ने ऊँटनी के दूध से कई प्रकार के उत्पाद तैयार किए हैं जिनमें चाय एवं कॉफी, पास्तुरिकृत दूध, सुगन्धित दूध, किण्वित दूध/लस्सी, पनीर, चीज, मक्खन, घी, कुल्फी, गुलाब जामुन, रसगुला, पेड़ा, दुग्ध पाउडर, त्वचा क्रीम इत्यादि शामिल हैं।

ऊँटनी का दूध

ऊँटनी का दूध हल्का नमकीन होता है। ऊँटनी के दूध में जल की मात्रा लगभग 89.5-91.5 प्रतिशत पाई जाती है। वसा की मात्रा 2.6-3.2 प्रतिशत तक पाई जाती है। दुग्ध वसा ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। दुग्ध वसा में आवश्यक वसीय अम्ल पाए जाते हैं। दूध का मुख्य कार्बोहाइड्रेट लैक्टोज है एवं यह ऊर्जा का एक अच्छा स्रोत है। लैक्टोज दूध में विलयन के रूप में उपस्थित रहता है जिस कारण से यह आसानी से पाचन योग्य है। ऊँटनी के दूध में लैक्टोज लगभग 3.8-4.8 प्रतिशत तक पाया जाता है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 2.11 से 3.5 प्रतिशत तक पाई गई है। दूध में मुख्यत: दो प्रोटीन पाए जाते हैं-केसीन (75-80 प्रतिशत) एवं मस्तु प्रोटीन्स (20-25 प्रतिशत) जिनमें केसीन सबसे प्रमुख प्रोटीन है। ऊँटनी के दूध में 21 प्रतिशत अल्फा-केसीन, 65 प्रतिशत वीटा-केसीन और 5 प्रतिशत कापा-केसीन पाया जाता है। मस्तु प्रोटीन्स में अल्फा-लैक्टएलब्यूमिन की अत्यधिक मात्रा (350 मि.ग्रा. प्रतिशत) पाई जाती है एवं बीटा-लेक्टोग्लोब्युलिन अनुपस्थित होता है। ऊँटनी के दूध में कई प्रकार के रक्षात्मक प्रोटीन्स जैसे लाइसोजाईम, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं पैप्टीडोग्लाइकान पाए जाते हैं। रक्षात्मक प्रोटीन दूध की गुणवत्ता को लम्बे समय तक बनाए रखने में भी सहायक होता है। ऊँटनी के दूध में मस्तु प्रोटीन्स की मात्रा गाय के दूध से लगभग दुगनी होती है।

दूध में मस्तु प्रोटीन्स की प्रचुरता कैंसर अवरोधी मानी जाती है। ऊँटनी के दूध में लोहा, जस्ता एवं तांबा की मात्रा गाय के दूध की तुलना में काफी अधिक है। विटामिन 'ए', 'बी' एवं विटामिन 'ई' भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। विटामिन 'सी' की मात्रा 4.84-5.26 मि.ग्रा.प्रतिशत तक होती है। विटामिन 'सी' की अधिक मात्रा दूध को लम्बे समय तक रखने में सहायक है।

मूल्य-संवर्धित उष्ट्र दुग्ध उत्पाद

उष्ट्र पालक सामान्यत: ऊँटनी के दूध का उपयोग पीने अथवा चाय/कॉफी एवं खीर बनाने के लिये करते हैं। इसके अलावा ऊँटनी के दूध से चाय एवं कॉफी, पास्तुरिकृत दूध, सुगन्धित दूध, किण्वित दूध, लस्सी, पनीर, चीज, मक्खन, घी, कुल्फी, गुलाब जामुन, रसगुल्ला, पेड़ा, दुग्ध चूर्ण अथवा पाउडर एवं त्वचा क्रीम इत्यादि भी बनाया जा सकता है। इन उत्पादों को बनाने की विधि केन्द्र के वैज्ञानिकों द्वारा विस्तृत अनुसंधान कर तय की गई है जो निम्नलिखित है :

चाय एवं कॉफी : ऊँटनी के दूध एवं पानी को 1:1 अनुपात में मिलाकर चाय कॉफी बनाया जा सकता है।

मक्खन एवं घी : किण्वन के पश्चात से बने दही को मथने पर मक्खन प्राप्त किया जा सकता है। एक लीटर दूध से 22-25 ग्राम तक घी प्राप्त किया जा सकता है। ऊँटनी के दूध से बने घी में स्वतन्त्र वसीय अम्ल की मात्रा 2.20-2.30 प्रतिशत एवं नमी 0.5-0.6 प्रतिशत तक पाई गई।

सुगन्धित दूध : दूध को छानने के बाद 45 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म कर उसमें 0.1 प्रतिशत स्टेबीलाईजर, 6 प्रतिशत चीनी एवं खाद्य रंग डालकर अच्छी तरह घोल लेते हैं। उसके बाद दूध को उबालकर ठण्डा कर लेते है। दूध के ठण्डा होने पर वांछित सुगन्ध (0.6 मिलीलीटर/लीटर) मिलाने के बाद सुगन्धित दूध को 4-6 डिग्री सेन्टीग्रेड पर भण्डारित कर देते हैं।

पनीर : दूध को छानने एवं 82-85 डिग्री सेन्टीग्रेड तक 5 मिनट गर्म करने के उपरान्त 70 डिग्री सेन्टीग्रेड तक ठण्डा करते हैं। इसके बाद 0.5-1.0 प्रतिशत सिट्रिक एसिड एवं 0.1-0.2 प्रतिशत तक कैल्शियम क्लोराइड स्कंदन करने के लिए मिलाते हैं। इस प्रकार से एक लीटर दूध से 90-100 ग्राम तक पनीर प्राप्त किया जा सकता है।

कुल्फी : ऊँटनी के दूध में कुल ठोस पदार्थ की मात्रा कम होने के कारण ऊँटनी के दूध को उबालकर लगभग आधा करने के बाद 9-10 प्रतिशत चीनी, 2 प्रतिशत कस्टर्ड पाउडर मिलाने के बाद अच्छी तरह मिलाते हैं एवं उसके बाद 0.025 प्रतिशत केसर, 1-3 प्रतिशत सूखे मेवे एवं 1-2 बूंद वांछित सुगन्ध मिलाते हैं। सभी चीजों को अच्छी तरह मिलाने के बाद कुल्फी कोन में भरकर जमा लेते हैं। ऊँटनी के दूध से चॉकलेट कुल्फी बनाने के लिए 5-6 प्रतिशत चॉकलेट एवं शुगर फ्री (चीनी रहित) कुल्फी में चीनी के स्थान पर 1.5 प्रतिशत शुगर फ्री पाउडर डालते हैं।

मावा : दूध को छानकर एक भगोने में डालकर चूल्हे पर गर्म करने के लिए रख देते हैं। शुरूआत में चूल्हे की आँच को तेज रखते हैं ताकि दूध अच्छी तरह उबलता रहे तथा साथ ही दूध को लगातार हिलाते रहते हैं ताकि न तो दूध उफन कर भगोने से बाहर निकले और न ही पैंदे में चिपके। इस प्रकार जैसे–जैसे दूध उबलकर कम होता जाए वैसे–वैसे दूध को पूर्ण सावधानी से हिलाते रहना चाहिए और आँच को भी लगातार कम करते रहना चाहिए जिससे दूध का मावा बनते समय रंग ज्यादा गहरा लाल न हो। अन्तिम समय में जबकि मावा बनकर तैयार होने वाला हो यानी दूध गाढ़ा हो जाए तब पूर्ण सावधानी रखते हुए दूध को कम आँच पर लगातार हिलाते रहना चाहिए ताकि गाढ़ा दूध भगोने से न चिपके और न ही दूध का स्वाद कड़वा हो। इसके बाद जब दूध पूर्णत: गाढ़ा हो जाए यानी कड़छी कठिनाई से हिलने लग जाए उस समय दूध का मावा बनकर तैयार हो जाता है। इस प्रकार बने मावा को ठण्डा करके फ्रीज में रख देते हैं जिससे ये पूर्णत: सुरक्षित रहे।

गुलाब जामुन : ऊँटनी के दूध से बने मावे को अच्छी तरह से मुलायम कर देते हैं। मुलायम करने के बाद एक किलो मावे में 100 ग्राम मैदा व 10 ग्राम इलाइची दाने मिलाते हैं जिससे गूंदते समय ये सब मिश्रित हो जाएं। साथ ही थोडा–सा देशी घी भी मिलाते हैं जिससे गुलाब जामुन की गोलियाँ बनाते समय मावा हाथ से न चिपके। सम्पूर्ण सामग्री गूंथे हुए आटे के समान हो जाने के बाद इच्छानुसार समान आकार की गोलियाँ बना लेनी चाहिए। तलते समय इस बात का खास ध्यान रखते हैं कि घी ज्यादा उबलता हुआ न हो। सामान्य गर्म होने के बाद घी की कड़ाई को चूल्हे से नीचे उतारकर उसमे मावे की बनाई हुई गोलियां डालनी चाहिए। इसके बाद कड़ाई को पुन: चूल्हे पर रखकर अच्छी तरह पकाते रहना चाहिए साथ ही पकाने की प्रक्रिया के दौरान ध्यान रखना चाहिए कि गुलाब जामुन की गोलियों का रंग सुनहरा रहना चाहिए। इस प्रकार तलने के पश्चात इन गोलियों को कम गर्म चासनी में सावधानीपूर्वक डाल देते हैं। गुलाब जामुन की गोलियों को तब तक रखना चाहिए जब तक की चासनी से गुलाब जामुन की गोलियां मीठी न हो जाएं। इस प्रकार गुलाब जामुन बनकर तैयार हो जाते हैं।

बर्फी : बर्फी को दूध से प्राप्त मावा से बनाया जाता है। मावा बर्फी को सामान्य तापक्रम पर 3–4 सप्ताह तक एवं रेफ्रिजरेटर में 3 महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है। चॉकलेट बर्फी में 10–15 प्रतिशत तक चॉकलेट पाउडर का इस्तेमाल किया जा सकता है।

पेड़ा : ऊँटनी के दूध से निर्मित मावा में चीनी पाउडर 3:1 के अनुपात में मिलाया जाता है। इसके उपरान्त इस मिश्रण के अलग–अलग आकार के पेड़े बनाये जाते हैं।

रसगुल्ला : ऊँटनी के ताजे दूध को छानने के पश्चात 5 मिनट तक उबाल कर एवं फिर 76–80° सेल्सियस तक ठण्डा कर इसमें 70–74° सेल्सियस तक गर्म 1 प्रतिशत सिट्रिक अम्ल का घोल

मिलाने पर फटे हुए दूध से मस्तु को अलग कर छैना प्राप्त करते हैं। छैना में 1-2 प्रतिशत मैदा मिलाया जाता है जिससे छैने की गोलियाँ टूटती नहीं है। छैने की गोलियों को 25 प्रतिशत चासनी में 20-25 मिनट तक उबालते हैं। इसके पश्चात रसगुल्लों की गोलियों को 50 प्रतिशत चासनी में डालकर भण्डारित कर लेते हैं। ऊँटनी एवं गाय का दूध 1:1 अनुपात में, ऊँटनी एवं भैंस का दूध 1.5:1, 1:1 अनुपात में उपयोग करने पर अच्छी गुणवता के रसगुल्ले बनाये जा सकते हैं।

मीठी लस्सी : उष्ट्र दुग्ध से मीठी लस्सी बनाने की प्रक्रिया में 5 प्रतिशत मलाई रहित दुग्ध पाउडर एवं 10 प्रतिशत चीनी मिलाकर इसके गाढ़ेपन एवं संवेदी गुण में सुधार किया जा सकता है।

इन सभी दुग्ध उत्पादों को घरेलू-स्तर पर तैयार कर निकट के बाजार में बेच कर लाभ कमाया जा सकता है।

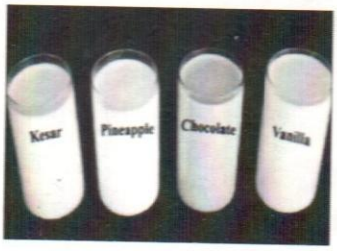

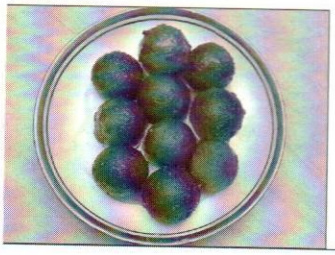

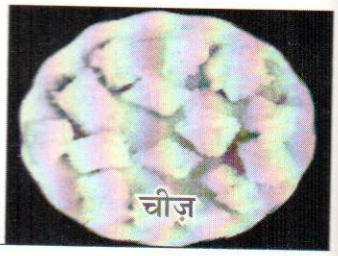

पशुओं में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ: लक्षण एवं उपचार

काशी नाथ

पशुओं में बीमारियाँ मुख्यत: विषाणु, जीवाणु, अंत: एवं बाह्य परजीवी, प्रोटोजोआ या फफूंद के संक्रमण से होती है तथा कुछ पशुओं में बीमारी कुपोषण या शरीर के अंदर की चपापचय (मेटाबोलिज्म) क्रिया में विकार के कारण भी होती है। पशुओं की कुछ बीमारियां संक्रामक होती है जो की एक पशु से दूसरे पशु में फैलती है जैसे गलघोंटू, एंथ्रेक्स, रेबीज इत्यादि बीमारियाँ पशु के उत्पादन को प्रभावित करती हैं जैसे मुहँपका खुरपका, थैनैला इत्यादि। पशु पालकों को पशुओं की प्रमुख बीमारियों के बारे में जानकारी रखना अति आवश्यक है ताकि वे उचित समय पर उचित कदम उठा कर आर्थिक हानि से बचाव कर सकें। पशुओं में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ निम्नलिखित हैं :

(क) विषाणु जनित रोग

1. मुँहपका-खुरपका

यह एक विषाणु जनित तीव्र गति से फैलने वाला संक्रामक बीमारी है। यह बीमारी मुख्यत: फटे खुर वाले पशुओं जैसे की गाय, भैंस,भेड़, बकरी व सूअर इत्यादि में ज्यादा होती है। विदेशी व संकर नस्ल की गायों में यह बीमारी अधिक गम्भीर रूप से पायी जाती है। इस रोग से ग्रस्त पशु अत्यन्त कमजोर हो जाता है तथा दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन बहुत कम हो जाता है जिसके चलते किसानों को काफी अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

संक्रमण विधि: यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने अथवा संक्रमित वस्तु जैसे कि पानी, घास, दाना, बर्तन, दूध आदि के संपर्क में आने से फैलता है। इस रोग के विषाणु बीमार पशु की लार, मुंह, खुर व थनों के फोडों व फफोलों में बहुत अधिक संख्या में पाए जाते हैं तथा ये विषाणु एक स्थान से दूसरे स्थान पर हवा द्वारा भी फैलते हैं। जब हवा में नमी ज्यादा होती है तब इसका प्रसार और तेजी से होता है। संकर नस्ल के पशु में यह बीमारी स्थानीय नस्ल के पशुओं की अपेक्षा ज्यादा तेजी से फैलता है।

रोग के लक्षण: बीमार पशु को बुखार आता है, पशु के मुंह के अंदर,गालों,जीभ,होंठ तालू व मसूड़ों के अंदर,खुरों के बीच तथा कभी-कभी थनों व आयन पर छाले पड़ जाते हैं। ये छाले फटने के बाद घाव का रूप ले लेते हैं जिससे पशु को बहुत दर्द होने लगता है। मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना-पीना बन्द कर देता हैं जिससे वह बहुत कमजोर हो जाता है तथा दूध का उत्पादन गिर जाता है। खुरों में दर्द के कारण पशु लंगड़ा कर चलता है। गर्भवती मादा में कई बार गर्भपात भी हो जाता है। लापरवाही होने

पर पशु के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं। हालांकि इस बीमारी से ग्रसित वयस्क पशुओं में मृत्यु दर बहुत कम है लेकिन इस रोग से पशु पालक को बहुत ज्यादा आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। दूध देने वाले पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी आ जाती है।

उपचार: इस रोग से ग्रसित पशुओं के मुंह व खुरों के घावों को 1 प्रतिशत पोटैशियम परमैंगनेट के घोल से धोया जाना चाहिये। मुंह में बोरो–गिलिसरीन तथा खुरों में किसी एंटीसेप्टिक लोशन या क्रीम का प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा बीमारी की गम्भीरता को कम करने के लिए लक्षणों के आधार पर पशु का उपचार किया जाना चाहिए। रोगी पशु में सेकैन्डरी जीवाणु संक्रमण को रोकने के लिए उसे पशु चिकित्सक की सलाह पर एंटीबायोटिक के टीके लगाए जाने चाहिए।

नियंत्रण एवं बचाव:

1. रोग ग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
2. जिस क्षेत्र या फार्म में इस महामारी का प्रकोप हुआ है, उस भवन को हलके अम्ल, क्षार द्वारा विषाणु मुक्त किया जाना चाहिए।
3. बीमार पशुओं की देख–भाल करने वाले व्यक्ति को भी स्वस्थ पशुओं के बाड़े से दूर रहना चाहिए।
4. बीमार पशुओं के आवागमन पर रोक लगा देना चाहिए।
5. रोग से प्रभावित क्षेत्र से पशु नहीं खरीदना चाहिए।
6. पशु शाला को साफ–सुथरा रखना चाहिए।
7. इस बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर जमीन में गाड़ देना चाहिए।
8. बीमारी से बचाव के लिए पशुओं को प्रति 6 माह में एफ.एम.डी. के टीके लगाए जाने चाहिये। बच्छड़े बच्छियां, कटडियों में पहला टीका चार माह की उम्र में लगाना चाहिए एवं 15 से 30 दिन बाद बूस्टर डोज अवश्य लगवाना चाहिए और उसके बाद नियमित टीके लगाए जाने चाहिए। ये टीकाकरण कार्यक्रम भेड़, बकरी व सूअर के लिये भी लागू हैं।

2. रेबीज

यह पशुओं में होने वाली सबसे खतरनाक एवं लाइलाज बीमारी है। एक बार पशु अथवा मनुष्य में इस बीमारी के लक्षण आ जाए तो पशु अथवा मनुष्य की मृत्यु निश्चित है। यह बीमारी पशुओं से मनुष्यों में भी आ सकती है, अतः इस बीमारी का जन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत महत्व है। देश में

इस रोग से हर साल लगभग 30,000 व्यक्ति मारे जाते है। इस रोग के लक्षण 20 वर्षो बाद भी देखे जाते हैं।

संक्रमण विधि: इस बीमारी के विषाणु कुत्ते, बिल्ली, नेवले के काटने से लार के जरिए स्वस्थ पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं तथा नाडियों के द्वारा मस्तिष्क में पहुंच कर उनमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं। इस रोग का विषाणु रोगग्रस्त पशु की लार में बहुतायत में होता है तथा रोगी पशु द्वारा दूसरे पशु को काट लेने से अथवा शरीर में पहले से मौजूद किसी घाव के ऊपर रोगी की लार लग जाने से एक पशु से दूसरे में फैलता है। पशु अथवा मनुष्य के शरीर में घाव आदि के माध्यम से विषाणु के प्रवेश करने के बाद 10 दिन से लेकर 210 दिनों तक की अवधि में यह बीमारी होने की सम्भावना रहती है। घाव जितना ही मस्तिष्क के नजदीक होता है बीमारी के लक्षण उतनी ही जल्दी देखने को मिलते हैं।

लक्षण: इस रोग के लक्षण दो रूप में दिखाई देता है, पहला जिसमें रोग ग्रस्त पशु काफी भयानक हो जाता है तथा पागलों की तरह बर्ताव करता है तथा दूसरा जिसमें वह बिल्कुल शांत रहता है। पहले अथवा उग्र रूप में पशु में रोग के सभी लक्षण स्पष्ट दिखायी देते हैं लेकिन शांत रूप में रोग के लक्षण बहुत कम अथवा नहीं के बराबर ही होते हैं। कुत्तों में इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है, कभी-कभी शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है। उसमें बहुत ज्यादा चिड़-चिड़ापन आ जाता है। वह काल्पनिक वस्तुओं की ओर अथवा बिना प्रयोजन के इधर-उधर काफी तेजी से दौड़ने लगता हैं तथा रास्ते में जो भी मिलता है, उसे वह काट लेता हैं। अन्तिम अवस्था में जबड़ों में लकवा हो जाता है, शरीर में कपकपी तथा चाल में लड़खड़ाहट आ जाती है तथा वह अनमना होकर एक कोने में पड़ा रहता है। अंत में पैरों और जबड़ों के लकवे से कुत्ते की मौत हो जाती है। गाय व भैंसों में इस बीमारी के भयानक रूप के लक्षण दिखते हैं। पशु काफी उत्तेजित अवस्था में दिखता है तथा वह बहुत तेजी से भागने की कोशिश करता हैं। वह जोर-जोर से रम्भाने लगता है तथा बीच-बीच में जम्भाइयाँ लेता हुआ दिखाई देता है। वह अपने सिर को किसी पेड़ अथवा दीवार के साथ टकराता है। कई पशुओं में मद के लक्षण भी दिखायी से सकते हैं। रोग ग्रस्त पशु दुर्बल हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। मनुष्य में इस बीमारी के प्रमुख लक्षणों में उत्तेजित होना, पानी अथवा कोई खाद्य पदार्थ को निगलने में काफी तकलीफ महसूस करना तथा अंत में लकवा होना आदि हैं।

उपचार तथा बचाव: कुत्ते के काटे जाने के बाद घाव का तुरंत प्राथमिक इलाज करना चाहिए तथा पशु को तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में ले जाकर इस बीमारी से बचाव का टीका लगवाना चाहिए। इस कार्य में ढील बिल्कुल नहीं बरतनी चाहिए क्योंकि ये टीके तब तक ही प्रभावकारी हो सकते हैं जब तक कि पशु में रोग के लक्षण पैदा नहीं होते। पालतू कुत्तों को इस बीमारी से बचाने के लिए नियमित रूप से टीके लगवाने चाहिए।

(ख) जीवाणु जनित रोग

1. गलघोंटू रोग (एच.एस.)

इस रोग को साधारण भाषा में गलघोंटू, घोंटूआ आदि नाम से भी जाना जाता है। यह गाय व भैंसों में होने वाली एक बहुत ही घातक तथा तथा संक्रामक बीमारी है। यह मानसून के समय व्यापक रूप से फैलता है तथा गायों की अपेक्षा भैंसों में अधिक देखने को मिलता है। यह रोग बहुत तेजी से फैलकर बड़ी संख्या में पशुओं को अपनी चपेट में लेकर उनकी मौत का कारण बन जाता हैं जिससे पशु पालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

लक्षण: इस रोग के प्रमुख लक्षणों में तेज बुखार, गले में सूजन, सांस लेने में तकलीफ जीभ निकालकर सांस लेना तथा सांस लेते समय तेज आवाज होना आदि शामिल है। इस रोग में पशु को अचानक तेज बुखार हो जाता है एवं पशु कांपने लगता है। रोगी पशु सुस्त हो जाता है तथा खाना–पीना कम कर देता है। पशु की आंखें लाल हो जाती हैं और श्वास लेने में कठिनाई होती है। श्वास में घर्रघर्र की आवाज आती है। कई बार बिना किसी स्पष्ट लक्षणों के ही पशु की अचानक मृत्यु हो जाती है।

उपचार तथा रोकथाम: इस रोग से ग्रस्त हुए पशु को तुरन्त पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए अन्यथा पशु की मौत हो जाती है। सही समय पर उपचार दिए जाने पर रोग ग्रस्त पशु को बचाया जा सकता है। इस रोग की रोकथाम के लिए बीमार पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। जिस स्थान पर पशु मरा हो उसे कीटाणुनाशक दवाइयों, फिनाइल या चूने के घोल से धोना चाहिये। पशुपालकों को अपने पशुओं को, प्रति वर्ष वर्षा (ऋतु से पूर्व) इस रोग का टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए।

2. लंगड़ा बुखार (ब्लैक क्वार्टर)

इस बीमारी को जहरबाद, फड़सूजन, काला बाय आदि नामों से भी जाना जाता है। यह एक जीवाणु जनित रोग है जो मुख्यत: गाय, भैंसों एवं भेड़ों में होता है। यह रोग प्राय: सभी स्थानों पर पाया जाता है लेकिन नमी वाले क्षेत्रों में ज्यादा पाया जाता है या रोग छह माह से दो साल तक की आयु वाले पशुओं में अधिक पाया जाता है।

लक्षण: इस रोग में पिछली अथवा अगली टांगों के ऊपरी भाग में भारी सूजन आ जाती हैं जिससे पशु लंगड़ा कर चलने लगता है या फिर बैठ जाता है। पशु को तेज बुखार आता है तथा उसका तापमान 104 डिग्री फॉरेनाइट से 105 डिग्री फॉरेनाइट तक पहुंच जाता है। पशु सुस्त होकर खाना–पीना छोड देता है। पशु चलने में असमर्थ होता है। यह रोग प्राय: पिछले पैरों को अधिक प्रभावित करता है एवं सूजन

घुटने से ऊपर वाले हिस्से में होती है। यह सूजन शुरू में गरम एवं कष्टदायक होती है जो बाद में ठण्ड एवं दर्द रहित हो जाती है। पैरों के अतिरिक्त सूजन पीठ, कंधे तथा अन्य मांसपेशियों वाले हिस्से पर भी हो सकती है। सूजन वाले स्थान को दबाने पर कड़-कड़ की आवाज आती है।

उपचार तथा रोकथाम: रोग ग्रस्त पशु के उपचार हेतु तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में संपर्क करना चाहिए ताकि पशु को शीघ्र उचित उपचार मिल सके। देर करने से पशु का बचना लगभग असंभव हो जाता है क्योंकि जीवाणुओं द्वारा पैदा हुआ जहर (टोक्सीन) शरीर में फैलने लगता है। ग्रसित जानवर को पशु चिकित्सक की सलाह से ऊँची डोज में पेनिसिलीन के टीके लगाने चाहिए तथा सूजन वाले स्थान पर भी इसी दवा को सुई द्वारा माँस में डाला जा सकता है। इस रोग की रोकथाम एवं बचाव हेतु पशुपालकों को वर्षा ऋतु से पूर्व इस रोग का टीका लगवा लेना चाहिए। रोगग्रस्त पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए। भेडों में ऊन कतरने से तीन माह पूर्व टीकाकरण करवा लेना चाहिये क्योंकि ऊन कतरने के समय घाव होने पर जीवाणु घाव से शरीर में प्रवेश कर जाता है जिससे रोग की संभावना बढ़ जाती है।

(ग) रक्त प्रोटोजोआ जनित रोग

1. बबेसिओसिस अथवा टिक फीवर (पशुओं के पेशाब में खून आना):

यह बीमारी पशुओं में एक कोशिकीय जीव जिसे प्रोटोजोआ कहते हैं, के संक्रमण से होती है। बबेसिया प्रजाति के प्रोटोजोआ पशुओं के रक्त में चिचडियों के माध्यम से प्रवेश करते हैं तथा वे लाल रक्त कोशिकाओं में जाकर अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं जिसके फलस्वरूप लाल रक्त कोशिकायें नष्ट होने लगती हैं। लाल रक्त कोशिकाओं में मौजूद हीमोग्लोबिन पेशाब के द्वारा शरीर से बाहर निकलने लगता है जिससे पेशाब का रंग कॉफी के रंग का हो जाता है।

लक्षण: पशु को तेज बुखार आता है तथा उसका तापमान 104 डिग्री फॉरेनाइट से 105 डिग्री फॉरेनाइट तक पहुंच जाता है। पशु के पेशाब में खून आता है जिससे पेशाब का रंग कॉफी के रंग का हो जाता है, पशु सुस्त होकर खाना पीना छोड़ देता है। इस बीमारी से पशु में खून की कमी हो जाती है जिससे पशु बहुत कमजोर हो जाता है तथा समय पर इलाज ना कराया जाय तो पशु की मृत्यु भी हो जाती है।

उपचार व रोकथाम: उपर्युक्त बीमारी के लक्षण दिखने पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क कर पशु का इलाज करवाना चाहिए। यदि समय पर पशु का इलाज कराया जाये तो पशु को इस बीमारी से बचाया जा सकता है। इसमें बेरेनिल के टीके पशु के वजन के अनुसार मांस में दिए जाते हैं। इस बीमारी से पशुओं को बचाने के लिए उन्हें चिचड़ियों के प्रकोप से बचाना जरूरी है क्योंकि ये रोग चिचड़ियों के द्वारा ही पशुओं में फैलता है। चिचड़ियों से बचाव के लिए पशुओं पर 4% डेल्टामेथ्रिनया साइपरमेथ्रिन

का पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए, इस घोल को पशुशाला या पशुओं के बांधने के जगह पर भी छिडकना चाहिए।

(घ) बाह्य तथा अंत: परजीवी जनित रोग

कई बार पशुओं के शरीर पर बाह्य परजीवियों जैसे कि जुएं, पिस्सु या चिचड. आदि का प्रकोप हो जाता है। ये परजीवी पशुओं का खून चूसते हैं जिससे उनमें खून की कमी हो जाती है तथा वे कमजोर हो जाते हैं। इनके काटने से पशु को दर्द होता है जिससे पशु खुजली करता है, बार-बार पैर पटकता है, कड़ी बस्तु से खुजाता है। इन सब परेशानियों के कारण पशु खाना-पीना कम कर देता है जिससे कि इन पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता घट जाती है तथा वे अन्य बहुत-सी बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। बहुत से परजीवी जैसे कि चिचडियों आदि पशुओं में कुछ अन्य बीमारी जैसे टीक-फीवरबबेसिओसिस, सर्रा आदि का संक्रमण भी फैलाते हैं। पशुओं में बाह्य परजीवी के प्रकोप को रोकने के लिए अनेक दवाइयां जैसे की डेल्टामेथ्रिन, साइपरमेथ् आइवरमेक्टिन आदि उपलब्ध हैं जिन्हें पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार प्रयोग करके इनसे बचा जा सकता है।

आंतरिक परजीवी पशुओं के विभिन्न अंगों में पाये जाते हैं जैसे पेट, रक्त, आंत, मांसपेशियों आदि। ये परजीवी विभिन्न अंगों को नुकसान पहुंचाने के साथ-साथ अन्य लक्षण भी प्रकट करते हैं। इस रोग में पशु खाना-पीना कम कर देता है। पशु को कभी कब्ज कभी दस्त हो जाते हैं। शरीर में खून की कमी हो जाती है, पशु पेट में दर्द महसूस करता है और उसके दस्त के साथ खून भी आता है। कभी-कभी पशु दांत भी किटकिटाने लगता है। दस्त के साथ कीडों का आना व पशु का निरंतर कमजोर होते जाना आदि अन्त: परजीवी रोगों के साधारण लक्षण हैं। इन अन्त: परजीवियों से बचाव के लिए पशु चिकित्सक के परामर्श से कृमिनाशक दवा हर 3 या 4 माह के अन्तराल पर अवश्य पिलानी चाहिए। समय-समय पर पशुओं के मल की जांच करवानी चाहिए। पशुओं के आवास साफ-सुथरा रखना चाहिए। पशुओं को तालाब या ठहरे हुए पानी को नहीं पिलाना चाहिए तथा उसके आसपास नहीं चराना चाहिए।

पशुओं का टीकाकरण करवाएं: संक्रामक रोगों से बचाएं

राकेश रंजन, संजय कुमार एवं मुहम्मद मतीन अंसारी

कई प्रकार के संक्रामक रोग जैसे गलघोंटू, खुरपका–मुंहपका, रेबीज, टिटनस, ब्लैक–क्वार्टर, पी. पी. आर. आदि पालतू पशुओं में जानलेवा सिद्ध हो सकते हैं। इसके अलावा कुछ अन्य संक्रामक रोगों जैसे माता, ब्रुसेल्लोसिस आदि की चपेट में आने पर पशु के स्वास्थ्य, उत्पादन एवम् प्रजनन पर बुरा असर पड़ सकता है। पशुपालक भाई, समय पर टीकाकरण करवाकर अपने पालतू पशुओं को इन रोगों से बचा सकते हैं। इस आलेख में पशुओं के लिए उपलब्ध मुख्य टीकों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इनमें से कई सरकारी पशु चिकित्सालयों में निःशुल्क भी लगाए जाते हैं। इस बारे में विस्तृत जानकारी किसान भाई पास के पशु चिकित्सालय जाकर प्राप्त कर सकते हैं।

1. खुरपका–मुँहपका: यह रोग गाय, भैंस, भेड़ और बकरी में ज्यादा होता है और कभी– कभी सूअर भी इससे प्रभावित हो सकता है। इस रोग में जानवरों में मुंह और खुर में लाल–लाल दाने दिखाई देते हैं जो बाद में फूट कर मवाद से भर जाते हैं। पशु को तेज बुखार आ जाता है, खाना–पीना छोड़ देता है और लंगड़ाने लगता है। ज्यादातर यह बीमारी जाड़े के मौसम में होती है, इसलिए इसका टीका नवम्बर और दिसम्बर में लगाया जाता है। जहां इस रोग का प्रसार ज्यादा होता है, वहां इसे साल में दो बार भी लगाया जा सकता है।

2. गलघोंटू : इस रोग को हिमोरेजिक सेप्टिसीमिया के नाम से भी जाना जाता है। यह गाय, भैंस, ऊँट, भेंड़, और बकरी का रोग है। इसमें पशु को तेज बुखार आता है, साँस लेने में तकलीफ होती है, कभी–कभी गले में सूजन आ जाती है और बाद में मृत्यु हो जाती है। यह रोग बरसात के दिनों में होता है। इसलिए इसका टीकाकरण मई–जून में किया जाता है। इस रोग का टीका ब्लैक क्वार्टर रोग के टीके के साथ भी आता है।

3. ब्लैक क्वार्टर : यह मुख्यत: कम उम्र के अच्छी शारीरिक अवस्था वाले गाय और भैंस में होता है। राजस्थान में इस रोग का प्रकोप कम हीं होता है। इसका टीका भी मई–जून में लगाया जाता है। इस रोग में पैरो में सूजन आ जाती है और बुखार हो जाता है।

4. ब्रुसेल्लोसिस: इसके संक्रमण से पशुओ में गर्भपात हो जाता है। यह रोग गाय, भैंस, भेंड़, बकरी और ऊँटों में होता है। इसका टीका गायों और भैसों (सिर्फ मादाओं) में 4 से 6 माह की उम्र में सिर्फ एक बार लगाना होता है।

5. इन्टेरोटोक्सेमिया: यह मुख्यत: भेड़ और बकरियों की बरसात में होने वाली बीमारी है। इसमें अचानक ही पशु की मृत्यु हो जाती है। इसके लिए टीकाकरण मई के महीने में किया जाना चाहिए।

6. टिटनस : इस बीमारी के लिए टीका जरुरत लगने पर ही किया जाता है। यदि किसी पशु को गहरा घाव हो गया हो तो इसका टीका अवश्य लगवाएं। घोड़े की लीद में इस पशु का जीवाणु आमतौर पर पाया जाता है, इसलिए यदि पशु के घाव को लीद से संक्रमित होने का खतरा हो तो इसे जरुर लगाना चाहिए।

7. रेबीज : यह एक जानलेवा बीमारी है, जिसका कोई उपचार उपलब्ध नहीं है। यह रोग सभी पालतू पशुओं को हो सकता है। सामान्यत: यह रोग किसी पागल कुत्ते या अन्य पशु जैसे नेवले, बंदर आदि के काटने पर होता है। अत: यदि किसी पालतू पशु को कुत्ते या किसी अन्य जंगली जानवर ने काटा हो तो रेबीज का टीका जरुर लगवाएं। काटने के बाद इसका टीका नियत समय के अन्तराल पर पांच बार लगवाना पड़ता है।

तालिका 1. पशुओं में प्रथम टीकाकरण की उम्र

पशु	उम्र
गाय, भैंस	3 महीना
भेंड़,बकरी	3 महीना
कुत्ता	1.5 से 2 महीना
ऊंट	2 महीना
घोड़ा	3 से 4 महीना
सूअर	3 महीना

8. पी पी आर : यह भेड़ और बकरियों का एक जानलेवा रोग है, जिसमें पशु को दस्त आता है और साथ में निमोनिया के लक्षण भी प्रकट होते हैं। इसका टीका, पहली बार तीन महीने की उम्र में लगवाने के बाद तीन साल के अंतराल पर एक बार लगवाना पड़ता है।

टीकाकरण के समय सावधानियाँ –

1. बीमार पशुओं का टीकाकरण न करवाएं।
2. स्वस्थ पशु पर टीकाकरण का असर ज्यादा होता है। संभव हो तो पशु को पेट के परजीवी की दवा देने के एक हफ्ते बाद टीकाकरण करवाएं।

3. गर्भवती पशुओ का टीकाकरण हमेशा पशुचिकित्सक की सलाह के बाद ही करवाएं।

4. टीकाकरण के लिए हमेशा नई सिरिंज और नीडल का इस्तेमाल करें।

5. टीका को बर्फ में डालकर या रेफ्रीजिरेटर में संग्रहित करें।

6. टीका का एक्सपायरी डेट चेक कर लें। एक्सपायर किया हुआ टीका कभी न लगवाएं, इससे लाभ के बजाय नुकसान हो सकता है।

7. टीका लगने के बाद अगले तीन चार दिनों तक टीका लगने वाली जगह की जाँच करते रहें। यदि वहां सोजिस और लाली दिखाई दे रही हो तो पशु चिकित्सक की सलाह पर गरम पानी में नमक डालकर सिंकाई करें या बर्फ का टुकड़ा मलें।

8. टीका लगने के बाद यदि पशु सुस्त रहने लगा हो या खाना छोड़ दिया हो तो तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

तालिका 2. गाय और भैंस का टीकाकरण

क्र. सं.	रोग का नाम	वैक्सीन का नाम	टीकाकरण की बिधि
1.	खुरपका–मुंहपका	रक्षा ओवैक, रक्षा बायोवैक, रक्षा ट्रायोवैक, बोविलिस, क्लोवेक्स, बायो एफ एम डी (ऑयल)	प्रति वर्ष दो बार चमड़े के नीचे (सब कुटेनियस)
2.	गलघोंटू (हिमोरेजिक सेप्टिसिमिया)	एच एस एलम प्रेसिपिटेटड वैक्सीन, एच एस आयल अड्जूवेंट वैक्सीन	बरसात के पहले साल में एक बार (मई जून)
3.	ब्लैक क्वार्टर	रक्षा बी क्यू	साल में एक बार, बेहतर हो मई जून में लगायें
4.	ब्रुसेल्लोसिस	बुवैक्स, ब्रुसेल्ला अबोरट्स स्ट्रेन 19 वैक्सीन (आई वी आर आई)	केवल एक बार चार से आठ महीने की उम्र में मादा पशुओं में

तालिका 3. भेड़ और बकरियों का टीकाकरण

क्र.सं.	रोग का नाम	वैक्सीन का नाम	टीकाकरण की विधि
1.	हिमोरेजिक सेप्टिसिमिया	एच एस एलम प्रेसिपिटेटड वैक्सीन, एच एस आयल अड्जूवेंट वैक्सीन	बरसात के पहले साल में एक बार (मई जून)
2.	इन्टेरो टोक्सेमिया	रक्षा –ई टी, बोविलिस – ई टी	बरसात के पहले साल में एक बार (मई जून)
3.	ब्लैक क्वार्टर	रक्षा बी क्यू, बोविलिस– एच एस बी क्यू (आयल एडजूवेंट)	साल में एक बार, बेहतर हो मई – जून में लगायें
4.	पी पी आर	पी पी आर वैक्सीन (आई वी आर आई), रक्षा पी.पी.आर.	साल में एक बार, बेहतर हो मई – जून में लगायें
5.	खुरपका–मुंहपका	रक्षा ओवैक, फुट ऐड माउथ वैक्सीन	साल में एक बार, पहला टीका चार महीने की उम्र में, दूसरा 13 महीने की उम्र में बाद में सालाना
6.	माता (पॉक्स)	रक्षा एस.पी.	पहला टीका 3 महीने की उम्र में फिर सालाना दिसम्बर के महीने में

गाय एवं भैंस के बछड़ों की देखभाल

जे.पी. कछावा

किसी भी पशु फार्म का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि फार्म पर बछड़ों का स्वास्थ्य कैसा है और उनकी मृत्यु दर कम है या नहीं। पशुपालन व्यवसाय से अधिक आमदनी तभी मिल सकती है जब जन्मोपरांत मृत्यु दर घटे तथा बछड़ें स्वस्थ रहें। नवजात बछड़ों की देखभाल में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं:-

जन्म के तुरन्त बाद

- बछड़े का जन्म होते ही आंख, नाक और मुंह से कफ (श्लेष्मा) आदि को साफ करें।
- सामान्यतया गाय एवं भैंस बछड़े को जन्म देते ही उसे जीभ से चाट कर साफ करने लगती है। इससे बछड़े के शरीर को सूखने में आसानी होती है और श्वसन क्रिया तथा रक्त का प्रवाह सुचारू रूप से होने लगता है। यह क्रिया पशुओं में आवश्यक होती है।
- यदि सर्दी का मौसम हो या गाय या भैंस बछड़े को न चाटे तो बछड़े के शरीर को सूखे कपड़े या टाट से पोंछकर सुखाएं।
- यदि बछड़ा सामान्य रूप से श्वास नहीं ले पा रहा हो तो हाथ से छाती को दबाकर और छोड़कर कृत्रिम श्वसन प्रदान करें।
- बाड़े के गीले बिछौने को हटाकर, स्थान को बिल्कुल साफ और सूखा रखना चाहिए।
- बछड़े की नाल अथवा सूंड को शरीर से 3 सेमी की दूरी पर गांठ बांध देनी चाहिए और बांधे हुए स्थान से 1 सेमी नीचे से कीटाणु रहित कैंची, ब्लेड आदि से काट कर टिंचर आयोडीन अथवा कोई भी अन्य एंटिसेप्टिक घोल लगाना चाहिए, अन्यथा सूंड में सूजन आ जाती है तथा सूंड की नली से कीटाणु शरीर में प्रवेश कर सकते हैं।
- सूंड को 3-4 दिन तक टिंचर आयोडीन लगाएं तथा नाभि का जख्म बिल्कुल ठीक हो जाए तब तक पूर्ण ध्यान रखें कि जानवर उसको चाटे नहीं।
- बछड़े के वजन को रिकॉर्ड करना चाहिए।

बछड़े को खींस पिलाना

- मां का पहला दूध अर्थात् खींस नवजात बछड़े को दिया जाने वाला सबसे पहला और सर्वोत्तम

आहार है। यह बछड़े के पोषण के लिए अति आवश्यक होता है। खींस की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नवजात बछड़ों की प्रतिरक्षा शक्ति कायम रखने में है क्योंकि खींस में एंटीबॉडी होती है जो उसे संक्रामक रोगों का सामना करने की क्षमता देती है।

- जन्म के तुंरत बाद जल्दी से जल्दी (2 घंटे तक) खींस अवश्य पिलानी चाहिए तथा लगातार तीन दिनों तक नवजात को खींस पिलाते रहना चाहिए।
- गाय के थन को एंटिसेप्टिक घोल द्वारा अच्छी तरह साफ कर सुखाएं और बछड़े को मां का पहला दूध (खींस) का पान करने दें।
- बछड़ा एक घंटे में खड़े होकर दूध पीने की कोशिश करने लगता है। यदि ऐसा न हो तो बछड़े की दूध पीने में सहायता करें।
- खीस का निर्माण मां के द्वारा बछड़े के जन्म से 3 से 5 दिन बाद तक किया जाता है।
- यदि बछड़ा सीधा ही थन से खींस पी लेता है तो उसके शरीर को अच्छी तरह पोषण मिलता है। लेकिन यदि बछड़ा कमजोर हो अथवा बीमार हो तो उसे बोतल से खींस पिला देनी चाहिए।
- बछड़े के शरीर के भार के अनुसार प्रति 10 किलो भार पर एक किलो खींस पिलानी चाहिए।
- बछड़े को 3 से 4 सप्ताह तक मां के दूध की आवश्यकता होती है। उसके बाद बछड़ा चारे से प्राप्त शर्करा को पचाने में सक्षम हो जाता है।
- बछड़े को खिलाने के लिए इस्तेमाल होने वाले बरतनों को अच्छी तरह साफ रखें। इन्हें और खिलाने में इस्तेमाल होने वाली अन्य वस्तुओं को साफ और सूखे स्थान पर रखें।
- बछड़े को दिए जाने वाले किसी भी आहार का तापमान लगभग कमरे के तापमान अथवा शरीर के तापमान के बराबर होना चाहिए।

बछड़ों को कृमिनाशक दवा पिलाना

- छोटे बछड़ों में 6 महीने की आयु तक जानलेवा दस्त की बीमारी अत्यधिक होती है जो कि सफेद लम्बे पठेरों (पेट के कीड़े) के पेट में होने के कारण हो सकती है।
- इस बीमारी में अधिकतर जन्म के पश्चात् मटमैले पीले रंग के बदबूदार दस्त आते है।
- यदि ये पठेरे अधिक संख्या में हों तो आंत में एक प्रकार का बंध–सा पड़ जाता है। पशु जमीन पर गिर जाता है और पैर पटकता है तथा ठीक समय पर देखभाल न की जाए तो मर जाता है।

- पशुपालक अपने नजदीक के पशु चिकित्सक से मिलकर अपने पशुओं के कृमिनाशक दवा अवश्य पिलाएं ताकि बछड़ा स्वस्थ रहे तथा वृद्धि अधिक हो।
- कभी–कभी इस बीमारी के परजीवी गर्भावस्था में ही माँ से बच्चे के पेट में रक्त संचार द्वारा पहुंच जाते हैं अत: माँ को भी गर्भावस्था में ही पेट के कीड़ों की दवा अवश्य पिलानी चाहिए।

बछड़ों को सींग रहित करना

- वर्तमान में आधुनिक पशुओं के फार्म पर बछड़ों को सींग रहित कर दिया जाता है क्योंकि पशुओं में सींग होने से व्यक्ति को चोट लगने का डर रहता है तथा आपस में लड़ने से भी पशुओं को सींगों से चोट लग सकती है। सींग रहित करने के लिए बिजली से चलित राड़ या पौटेशियम सटिक से की जाती है।

बछड़े का पानी

- बछड़े को हर वक्त साफ और ताजा पानी ही पिलाएं तथा एक बार पिलाने के बजाय बार–बार पिलाएं। बछड़े को जरूरत से ज्यादा पानी एक ही बार में पीने से रोकने के लिए पानी को अलग–अलग बर्तनों में और अलग–अलग स्थानों पर रखें।

बछड़े का भोजन

- 15 दिनों बाद बछड़ा घास खाना शुरू कर देता है जिसकी मात्रा लगभग आधा किलो प्रतिदिन होती है जो 3 महीने बाद बढ़कर 5 किलो तक हो जाती है।
- इस दौरान हरे चारे के स्थान पर 1–2 किलो अच्छे प्रकार का सूखा चारा (पुआल) बछड़े का आहार हो सकता है जो 15 दिन की उम्र में आधा किलो से लेकर 3 महीने की उम्र में डेढ किलो तक दिया जा सकता है।
- 3 सप्ताह के बाद यदि संपूर्ण दूध की उपलब्धता कम हो तो बछड़े को मक्खन निकाला हुआ दूध, छाछ अथवा अन्य दुग्धीय तरल पदार्थ दिया जा सकता है।
- अच्छे किस्म के तनायुक्त पत्तेदार सूखे दलहनी पौधे छोटे बछड़े के लिए रेशे का अच्छा स्रोत हैं। दलहन, घास और पुआल का मिश्रण भी उपयुक्त होता है।
- धूप लगाई हुई घास जिसकी हरियाली बरकरार हो, विटामिन–ए, डी विटामिनों का अच्छा स्रोत होती है।

बैकयार्ड कुक्कुट पालन

चन्द्रहास, राज नारायण एवं विशेष कुमार सक्सेना

भारत में मुर्गी पालन एक उद्योग का रूप ले चुका है। इस कारण अण्डे की वार्षिक उपलब्धता 1971 में 10 से बढ़कर आज 61 अण्डे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो गई है। इसी तरह मांस की वार्षिक उपलब्धता 1971 में 0.22 किग्रा. से बढ़कर आज 3.20 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो गई है। फिर भी यह उत्पादन भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद, नई दिल्ली द्वारा निर्धारित मानदंडों (प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति अण्डा एवं मांस क्रमश: 180 और 10.95 कि.ग्रा.) से काफी कम है। इन मानकों को पूरा करने के लिए हमें अण्डा एवं मांस की उत्पादकता में लगभग 4-5 गुना वृद्धि करनी होगी। शायद व्यावसायिक मुर्गी पालन अकेले इस उत्पादन को पूरा करने में सक्षम नहीं होगा क्योंकि व्यावसायिक कुक्कुट पालन में प्रयुक्त आहार के अधिकांश अवयव मनुष्य के खाने में प्रयुक्त होता है। जनसंख्या में हो रही तेज वृद्धि के कारण कुक्कुट आहार में प्रयुक्त अवयव की आपूर्ति भविष्य में और कठिन होगी। अत: आज एक ऐसे मुर्गीपालन पद्धति की आवश्यकता है जिसमें मनुष्य से खाद्य सामग्री प्रतिस्पर्धा कम से कम हो तथा अतिअल्प आहार खर्चे पर ज्यादा से ज्यादा अण्डा एवं मांस का उत्पादन किया जाए क्योंकि मुर्गी पालन के कुल खर्चे का लगभग 70-75 प्रतिशत खर्च आहार पर ही होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु बैकयार्ड कुक्कुट पालन एक सटीक विकल्प साबित हो सकता है।

बैकयार्ड कुक्कुट पालन में प्राय: 5-20 मुर्गियों का छोटा-सा समूह एक परिवार या घर में पाले जाते हैं जो घर के पिछवाड़े तथा गली कूचों से बीज, कीड़े-मकोड़े, घास- फूस, पौधों की कोमल पत्तियां तथा घर के जूठन इत्यादि को खाकर अपना पेट भरते हैं। मुर्गी पालन की इस पद्धति को कम से कम खर्चे में छोटे, लघु एवं सीमांत कृषक, भूमिहीन मजदूर तथा घरेलू महिलाएं आसानी से अपना सकते हैं। केवल प्रतिकूल वातावरण में निम्न कोटि का थोड़ा-सा अनाज खिलाने की जरुरत पड़ती है। इस पद्धति द्वारा अण्डे और मांस लगभग बिना किसी लागत के उपलब्ध हो जाते हैं। इन अण्डों को खाकर घर के सदस्य न केवल कुपोषण से बचते हैं बल्कि शेष अण्डे बाजार में बेचकर थोड़ी आय भी प्राप्त कर लेते हैं, जो घर की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है। ग्रामीण बाजारों में अण्डों की कीमत भी ज्यादा होती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय भी बहुत कम होती है। अत: बाजार से अण्डा खरीदना इन सीमांत कृषकों के लिए सम्भव नहीं हो पाता। ग्रामीण परिवेश में पली मुर्गियों का अण्डा स्वस्थ एवं आर्गेनिक आहार के रूप एक अच्छा विकल्प साबित होता है। बैकयार्ड कुक्कुट पालन की महत्ता निम्नलिखित बातों से और ज्यादा स्पष्ट हो जाती है :

1. इस पद्धति द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी मांस और अण्डे की उपलब्धता लगभग बिना किसी लागत के आसानी से उपलब्ध हो जाती है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोटीन कुपोषण से निपटने में

काफी मदद मिलती है।

2. इस पद्धति से उत्पन्न अण्डे एवं मांस में एक विशेष सुगंध तथा स्वाद होता है। इस कारण इनको बेचने पर फार्मी अण्डों तथा मांस से काफी ज्यादा कीमत मिलती है। इस पद्धति द्वारा किसान लघु किन्तु नियमित आय कमा सकता है।

3. इस विधि में भूमि, श्रम एवं पूंजी की आवश्यकता बहुत ही कम होती है। इसके लिए किसी विशेष आवास या रख-रखाव की आवश्यकता नहीं होती हैं अत: भूमिहीन या अशिक्षित किसान भी इसे आसानी से अपना सकते हैं। केवल एक बार शुरू में मुर्गा एवं मुर्गियों की खरीद में नाममात्र लागत आती है और बाद में उत्पादन का क्रम अपने आप चलता रहता है।

4. भूमिहीन एवं सीमांत किसान, जो बड़े जानवर जैसे कि गाय, भैंस, बकरी या भेड़ें नहीं पाल सकते, उनके लिए यह मुर्गी पालन पद्धति कमाई का अच्छा जरिया साबित हो सकता है।

5. चूँकि इस पद्धति में किसी विशेष तकनीक की आवश्यकता नहीं पड़ती है अत: इसका प्रबंधन अशिक्षित लोग, महिलाएं और बच्चे भी कर सकते हैं।

6. अण्डे एवं मांस की उपलब्धता घर में होने के कारण मेहमानों की अच्छी खातिरदारी होती है। मुर्गे एवं मुर्गियों को उपहार स्वरुप भी दिया जा सकता है।

7. गहन प्रणाली के इतर इस पद्धति द्वारा मुर्गियाँ अपने प्राकृतिक वातावरण में रहती हैं।

8. यह पद्धति पर्यावरण प्रदूषण के खतरे को भी कम करता है।

9. इस विधि द्वारा मिट्टी की उर्वरकता भी बढ़ती है। दाना चुगने के दौरान 15 मुर्गियों का झुण्ड प्रतिदिन लगभग 1.0-1.25 किलो बीट खाद के रूप में देती है।

10. इस पद्धति द्वारा पैदा अंडे एवं मांस में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा काफी कम होती है, अत: इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है।

11. यह ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराता है। अत: यह पद्धति ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का शहरी क्षेत्रों में प्रवास को रोकने में मदद कर सकती है।

बैकयार्ड कक्कुट पालन की समस्याएं एवं उनका निदान :

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस पद्धति द्वारा मुर्गी पालन से ग्रामीण क्षेत्रों में बहुआयामी रोजगार के अवसर पैदा हो सकते हैं, परंतु पिछले चार दशकों से इस पद्धति द्वारा मुर्गी पालन में काफी कमी आई है। इसका मुख्य कारण आज का बदलता हुआ परिवेश है। आज की बढ़ती हुई जनसंख्या,

घर के आंगन व पिछवाड़े के जमीन को सीमित करती जा रही है। गली–कूचों तथा आंगन के पक्कीकरण, खेतों में कीटनाशक तथा रासायनिक खादों का अत्यधिक प्रयोग एवं बहुफसलीय उत्पादन पद्धति ने कीड़े– मकोड़े एवं फसलों के गिरे दाने की उपलब्धता बहुत ज्यादा घटा दी है। घूमने–फिरने एवं चुगने के लिए खाली जगह की उपलब्धता का ह्रास तथा प्राकृतिक खाद्य स्त्रोतों में निरंतर गिरावट भी इस पद्धति द्वारा मुर्गीपालन की परंपरागत प्रणाली को खत्म कर रही है। भूतकाल में भी इस उत्पादन प्रणाली के सुधार के तहत कम उत्पादन वाली स्थानीय अथवा देशी मुर्गियों के एकतरफा अनुवांशिक सुधार पर बल दिया गया। लेकिन समग्र विकास योजना के अभाव में यह सफल नहीं हो सका। एक अपरिष्कृत बैकयार्ड कुक्कुट पालन प्रणाली में बेहतर नस्ल की मुर्गियों का समायोजन भी इसके विफलता का एक और कारण प्रतीत होता है क्योंकि ये विकसित नस्लें अपने आप को निम्न–स्तरीय खान–पान, घटिया स्वास्थ्य व्यवस्था, शिकारी जानवरों से बचाव में निर्बलता इत्यादि के कारण, अपने आपको इस परिवेश में ढाल नहीं सकी। अत: इस प्रणाली में उत्पादन सुधार हेतु एक समग्र दृष्टिकोण एवं चरणबद्ध तरीके की आवश्यकता है। बैकयार्ड कुक्कुट उत्पादन की सफलता के लिए निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए :

(1) उपयुक्त कुक्कुट नस्लों का विकास एवं आपूर्ति

(2) संतुलित पूरक आहार

(3) आवास व्यवस्था

(4) रोग नियंत्रण

(5) तकनीकी ज्ञान

1) उपयुक्त कुक्कुट नस्लों का विकास एवं आपूर्ति : बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु विदेशी नस्लों की जगह देसी नस्लें ज्यादा उपयुक्त होती हैं, किन्तु अव्यवस्थित प्रजनन व्यवस्था के कारण देशी नस्ल की मुर्गियां ज्यादा उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं होती है। अत: ज्यादा उत्पादन वाली देशी मुर्गियों का समायोजन इस व्यवस्था हेतु अति आवश्यक है। देशी नस्ल की मुर्गियां, स्थानीय माहौल में सदियों से पलने के कारण, अपने आप को यहाँ के वातावरण में आसानी से ढाल लेतीं हैं एवं अपने में रोग निरोधी क्षमता का ज्यादा समायोजन करती हैं। इसी के चलते ये मुर्गियां देश के आर्द्र–उष्मीय प्रकोप को सहने में सक्षम होती हैं। साथ ही इनमें घूम–फिर कर अपना भोजन जुटाने, निम्न कोटि के आहार पर जीवन यापन करने, हल्के तथा फुर्तीले शरीर के कारण शिकारी जानवरों से बचाव एवं वंशक्रम चलाने की असीम क्षमता होती है।

परंपरागत मुर्गीपालन की कम लोकप्रियता के विभिन्न कारणों में सबसे महत्वपूर्ण उच्च-उत्पादकता वाली देशी मुर्गियों की प्रजातियों का अभाव है। ग्रामीण मुर्गी पालन हेतु विकसित नई किस्म की लगभग सभी प्रजातियाँ विदेशी एवं देशी नस्लों की प्रजातियों/ स्ट्रेन/लाइन के संकरण से विकसित की गई हैं। संकरण करते समय विशेष रूप से यह ध्यान रखा गया कि विकसित किस्म की मुर्गी रंगीन पक्षति वाली हो। यह द्वी-उद्देशीय नस्लें मध्यम शारीरिक भार एवं अण्डा उत्पादन के कारण ग्रामीण वातावरण में पलने के लिए उपयुक्त हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में नस्ल अनुपयुक्तता की प्रमुख वजह मातृत्व गुण में कमी, अधिक शरीर भार के कारण शिकारियों से आत्मरक्षा में शिथिलता, छोटी टांगो के चलते तेज भागकर अपने शिकारियों से बचने का अभाव इत्यादि हैं। वास्तव में अगर ग्रामीण परिवेश की पली अच्छी देशी नस्लों के मुर्गियों के रख-रखाव और खान-पान पर पूरा ध्यान दिया जाय तो ये ही मुर्गियां, मांस तथा अण्डे की विकसित नस्लों के सापेक्ष, बेहतर उत्पादन देने में सक्षम हैं। लेकिन ग्रामीण मुर्गीपालकों के लिए ऐसा सम्भव नहीं हो पाता है। अत: ग्रामीण परिवेश के लिए उपयुक्त लगभग सभी गुणों वाले विशेष प्रकार की प्रजातियों के विकास की जरुरत है। ग्रामीण परिवेश में बैकयार्ड कुक्कुट पालन के लिए उपयुक्त मुर्गियों में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक होता है :

अ) मुर्गी का रंग : इस पद्धति में मुर्गी का रंगीन होना आवश्यक है क्योंकि इनका रंगीन शरीर इनको पेड़-पौधों, झुरमुटों आदि में छुपने में सहायता करता है, जिससे शिकारी जानवरों से इनका बचाव आसानी से हो जाता है। साथ ही इनकी लोकप्रियता ग्रामीण उद्गम के कारण विदेशी मुर्गियों से ज्यादा होती है।

आ) शारीरिक स्वरुप एवं स्वभाव : ग्रामीण मुर्गी का कम वजनी, लम्बी टाँगें, मजबूत एवं विकसित पंखों के साथ-साथ लड़ाकू स्वभाव का होना अत्यंत आवश्यक है जिससे वे अपनी सुरक्षा बिल्ली, कुत्ते आदि जैसे शिकारियों से कर सकें।

इ) उत्पादकता : बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु मध्यम दर्जे की मांस और अण्डा उत्पादन क्षमता वाली मुर्गी ज्यादा उपयुक्त होती है क्योंकि ग्रामीण वातावरण में खाने के प्राकृतिक स्रोतों की उपलब्धता हमेशा एक समान नहीं होतीं तथा इनको पाने के लिए कई बार मुर्गियों को लम्बी दूरी तय करने का जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता है।

ई) रोग प्रतिरोधक क्षमता : ग्रामीण दूरदराज क्षेत्रों में उचित रोगनिरोधक उपायों का अनुसरण हमेशा कई कारणों से सम्भव नहीं हो पाता है। साथ ही मुर्गियों को खुले वातावरण में घूम-फिर कर अपना भोजन गन्दी नालियों, गली-कुंचों, सड़कों इत्यादि से कीड़े-मकोड़े जैसे चीजों से इकट्ठा करना पड़ता

है। अत: इनमें रोग निरोधक क्षमता का ज्यादा होना अनिवार्य है। प्राकृतिक तौर पर देशी रंगीन मुर्गियों में यह गुण प्राकृतिक रूप में ज्यादा पाई जाती है।

उ) उष्णकटिबंधीय अनुकूलनशीलता : ग्रीष्म–उष्मीय वातावरण में बेहतर उत्पादकता के लिए उष्णकटिबंध जनित जीन का नस्ल विकास में प्रयोग लाभप्रद हो सकता है।

ऊ) स्वजननीय क्षमता : भारत के ग्रामीण दूर दराज इलाकों में हर वर्ष विकसित नस्ल के चूजों की उपलब्धता सम्भव नहीं है। अत: बैकयार्ड कुक्कुट पालन के लिए विकसित नस्ल में स्वजननीय क्षमता होना आवश्यक है तथा इन नस्लों में ब्रुडीनेस अथवा 'अंडा सेने की क्षमता' की मौजूदगी जरुरी है जिससे ये अपने संतति पीढ़ी–दर–पीढ़ी तैयार कर सकें।

प्राय: उन्नत देशी नस्लों या देशी एवम विदेशी नस्ल की संकर प्रजातियों में उपरोक्त वर्णित अधिकांश गुण मौजूद होतें हैं। इसी क्रम में केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, इजतनगर बरेली (उ. प्र.) में कारी निर्भीक (चित्र संख्या 1), कारी श्यामा (चित्र संख्या 2), उपकारी (चित्र संख्या 3) तथा हितकारी (चित्र संख्या 4) नामक चार उन्नत नस्लों को देशी मुर्गी की चार विभिन्न प्रजातियों का उपयोग करके बनाया गया है। इन चारों प्रजातियों में देशी मुर्गी के लगभग सारे गुणों की मौजूदगी के साथ–साथ वार्षिक अंडा उत्पादन क्षमता लगभग 160–200 है। इनके अण्डों का भार 52–60 ग्राम तथा रंग गहरे भूरे रंग का होता है। इनमे गर्मी सहने एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बेहतर होने के साथ–साथ निम्न कोटि के आहार के तनाव को भी अच्छी तरह बर्दाश्त करने के गुण मौजूद होते हैं।

चित्र संख्या 1: कारी निर्भीक

चित्र संख्या 2 : कारी श्यामा

चित्र संख्या 3: उपकारी

चित्र संख्या 4: हितकारी

2) संतुलित पूरक आहार : बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु विकसित उन्नत नस्ल की मुर्गियों के पोषक तत्व की आवश्यकता अधिक होने के कारण इसके आहार पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। प्राकृतिक स्त्रोतों में मुर्गी आहार/मात्रा में दिन-प्रति-दिन कमी आ रही है। अत: संतुलित आहार की उपलब्धता बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु अति आवश्यक हो गया है। आमतौर पर ग्रामीण किसान सिर्फ एक तरह के मौसमी अनाज मुर्गियों को खाने के लिए देते हैं, जिससे मुर्गियों का आहार संतुलित नहीं हो पता है। अत: सालभर में उपजित विभिन्न अनाजों को मिश्रित करके मुर्गियों को खिलाना ज्यादा लाभप्रद हो सकता है। यदि लवण मिश्रण (मिनरल मिक्सचर) एवं विटामिन मुर्गियों के दाने में मिश्रित किया जाय तो अण्डे-मांस का उत्पादन और बढ़ जाता है। यह आहार प्रति मुर्गी करीब 30-40 ग्राम की दर से शाम के समय देना चाहिए। बाजार में उपलब्ध निम्न-कोटि के अनाज, जिसको मनुष्य आहार हेतु प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है, को भी इन मुर्गियों के दाने के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। आहार की मात्रा प्राकृतिक स्त्रोतों से उपलब्ध खाद्य मात्रा के अनुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

3) आवास व्यवस्था : बैकयार्ड कुक्कुट पालन में मुर्गियों को पूरे दिन, स्वयं भोजन संग्रहण के लिए, खुले एवं प्राकृतिक वातावरण/स्थानों में छोड़ दिया जाता है एवं रात्रि-विश्राम तथा शत्रुओं/परभक्षियों से सुरक्षा के लिए छोटे-छोटे मुर्गी आवास या दड़बों की व्यवस्था की जाती है (चित्र संख्या 5)। प्राय: 2.0 x 1.0 वर्ग मीटर परिमाप के दड़बों में 10-15 वयस्क मुर्गियों को आराम से रात्रि विश्राम हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। ये दड़बे स्थानीय सामग्रियों के प्रयोग से कम लागत में तैयार करना चाहिए। अच्छे उत्पादन हेतु मुर्गी के दड़बे साफ-सुथरे एवं हवादार होने चाहिए।

यदि सम्भव हो तो दड़बों में तीन इंच मोटी धान की भूसी के बिछावन की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे दड़बों की प्रतिदिन सफाई से मुक्ति मिल सके। पीने के लिए चौबीसों घंटे स्वच्छ पानी की व्यवस्था घर के अंदर एवं बाहर दोनों जगह कर देनी चाहिए।

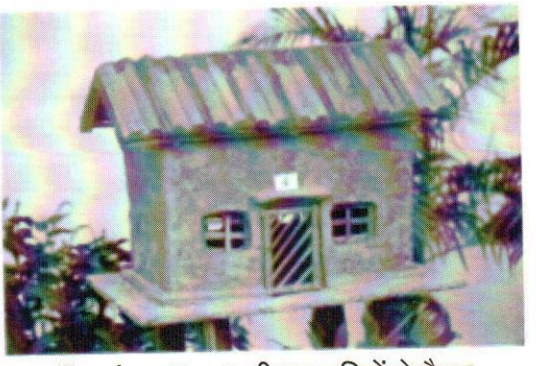

चित्र संख्या 5: स्थानीय सामग्रियों से तैयार कम लगत के मुर्गी दड़बे

4) रोग नियंत्रण : कुक्कुट बीमारियों के प्रकोप से भारी मृत्यु दर बैकयार्ड मुर्गी पालन के लिए एक बड़ी समस्या है। अत: रोगों से बचाव के लिए उचित समय पर विभिन्न मुर्गी रोगों का टीकाकरण आवश्यक है। टीकाकरण करवाने के लिए यह जरुरी है कि मुर्गीपालक एक साथ बड़ी संख्या में चूजे निकलवायें तथा एकमुश्त टीका लगवाएं। अत: आस-पास के गांवों के मुर्गीपालक आपस में

विचार–विमर्श कर के एक सप्ताह के अंदर ही अण्डों को मुर्गी द्वारा सेने के लिए बैठाएं जिससे चूजे समूह में निकलें एवं टीकाकरण आसानी से सम्भव हो पाए। शुरुआत में टीका एक दिन से एक सप्ताह की उम्र के चूजों को एक साथ दिया जा सकता है। उचित समय पर टीकाकरण के लिए ब्लॉक के पशुचिकित्सक को सूचित करके इसको और भी सफल बनाया जा सकता है।

5) तकनीकी ज्ञान : ग्रामीण क्षेत्रों में मुर्गियों से बार–बार साल भर बच्चे प्राप्त करते रहने से उनमे कुड़क होने की आदत पड़ जाती है। अत: यह आवश्यक है कि मुर्गी द्वारा दिए गए अण्डों को प्रतिदिन उनके दड़बों से हटा दिये जायें जिससे मुर्गी द्वारा अण्डा न देख पाने के कारण कुड़क होने की आदत कम हो जाती है एवं अण्डा उत्पादन में भी वृद्धि होती है। इस विधि के अपनाने से केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर में शुद्ध देशी मुर्गियों से भी 130–150 अण्डों के उत्पादन सम्भव हो पाया है जो कि अण्डे न हटाने की स्थिति में केवल 50–75 ही रह जाती है। ऐसा इसलिए कि देशी मुर्गी प्राय: 12–15 अण्डे देने के बाद अंडे सेने तथा बच्चों को पालने के लिए कुड़क हो जाती है। यह क्रम साल में 4–5 बार चलता है एवं देशी मुर्गियों का वार्षिक उत्पादन केवल 50–75 अण्डों तक रह जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राय: पहली बार में खरीदे गए जोड़े से ही साल–दर–साल चूजे निकाले जाते हैं। इस तरह कई वंशावलियों तक घर में निकाले गए चूजों में इनब्रीडिंग या अंत: प्रजनन का विकार उत्पन्न होता है। इस दुष्प्रभाव के कारण अण्डे की संख्या, निषेचन तथा प्रस्फुटन में भारी कमी आती है एवं चूजों की मृत्यु दर में भी वृद्धि होती है। अत: यह आवश्यक है कि हर वर्ष नए संकर देशी चूजे किसी अच्छी हैचरी से लिए जाए। अगर घर में चूजे निकलवाना जरुरी हो तो साल में कम से कम एक बार पड़ोसी गाँव से समान नस्ल का मुर्गा बदलते रहना चाहिए। इससे अंत: प्रजनन (इनब्रीडिंग) के अवसाद से बचने में मदद मिलती है तथा अंडा उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता में वृद्धि के साथ–साथ चूजों के मृत्यु दर में भी कमी आती है।

आशा है कि पाठकों खासकर ग्रामीण मुर्गी पालकों को इस लेख के माध्यम से बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु यथा संभव जानकारी मिल पाएगी तथा इस पद्धति के माध्यम से अंडा एवं मुर्गी मांस की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी लेते हुए अपने परिवार को खुशहाल बना पाएंगे। जिन मुर्गीपालक भाइयों अथवा बहनों को पक्षी अनुसन्धान संस्थान से मुर्गी पालन हेतु विशेष जानकारी लेनी हो अथवा जिन्हें एक दिवसीय चूजों की आवश्यकता हो वो निम्नलिखित माध्यमों से संपर्क साध सकतें हैं

दूरभाष : 91–581–2303223, 2300204,
2301220, 2310023, Extn.: 3002
ईमेल: cari_director@rediffmail.com
director.cari@icar.gov.in

बकरियों का स्वास्थ्य प्रबंधन

नितिका शर्मा, आशीष श्रीवास्तव, गोपाल दास एवं अनिल कुमार मिश्रा

राजस्थान भारत का ऐसा भू–भाग है –जहाँ वर्षा कम एवं अनियमित होती है, सिंचाई के साधन सीमित हैं, भूमि कम उपजाऊ एवं बंजर है। ऐसे क्षेत्रों में पशुपालन विशेषकर बकरी पालन अधिकांश किसानों तथा जन–जातियों की आजीविका का महत्वपूर्ण साधन है। भारत में बकरी पालन के विकास में संक्रामक रोग प्रमुख बाधा हैं। पी. पी. आर., बकरी चेचक, इन्टेरोटोक्सीमिया (आंत्र विषाक्तता), खुरपका–मुँहपका, गलाघोंटू, अन्तः एवं वाह्य परजीवियों से होने वाली बीमारियाँ बकरियों के प्रमुख रोग हैं जिनसे 25 से 50 प्रतिशत तक पशु प्रभावित होते हैं। फलस्वरूप माँस उत्पादन एवं जनन क्षमता कम हो जाती है तथा मृत्यु दर 20–30 प्रतिशत तक हो जाती है जिससे बकरी पालक को आर्थिक हानि होती है। भारत में बकरियों में होने वाले प्रमुख रोगों का विवरण तथा प्रबंधन इस प्रकार है:

पी. पी. आर.

पी. पी. आर. बकरियों में होने वाली एक भयानक बीमारी है; इसे बकरियों का प्लेग भी कहते हैं। यह एक विषाणु जनित रोग है। इसकी भयानकता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि एक बार संक्रमण के बाद इससे प्रभावित रेवड़ के 70–90 प्रतिशत तक भेड़–बकरी मर जाती हैं। इस बीमारी का प्रकोप 3–4 वर्ष में प्रायः देखा जाता है। पी.पी.आर. रोग का संक्रमण प्रायः एक संक्रमित जानवर के दूसरे स्वस्थ जानवर के संपर्क में आने पर होता है। इसके अतिरिक्त दूषित खाने–पीने की वस्तुओं के आदान–प्रदान से भी इस रोग का संक्रमण हो जाता है। सर्द ऋतु में प्रायः इस रोग का प्रकोप अधिक हो जाता है। व्यापार की दृष्टि से भी अटीकाकृत भेड़–बकरियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी पी.पी.आर. रोग को बढ़ावा देता है।

लक्षण:

- कमजोरी, भूख न लगना, 3–5 दिन तक तीव्र बुखार बने रहना।
- नाक, आँख एवं मुंह से पानी का बहना तथा सांस लेने में तकलीफ होना।
- मुंह और जीभ पर छाले बनना।
- तीव्र दस्त तथा 5–10 दिन में बकरियों की मृत्यु हो जाना।

पी.पी.आर. के लक्षण: मुंह और जीभ पर छाले बनना, नाक एवं मुंह से पानी का बहना व तीव्र दस्त

बचाव के उपाय : एक बार संक्रमण फैलने के बाद प्रभावित बकरियों को बचाना अत्यंत कठिन हो जाता है। यह एक विषाणु जनित संक्रामक रोग है, अत: इसके बचाव में ही इसका उपचार है। बीमार बकरियों का एन्टीबायोटिक दवाइयों से उपचार कराने पर कुछ हद तक लाभ मिल सकता है।

- पी. पी. आर. रोग का टीकाकरण ही इस रोग के बचाव का एकमात्र उपाय है। टीका 3 माह या इससे ऊपर की उम्र की सभी बकरियों में लगाया जा सकता है। टीके से कोई नुकसान नहीं होता है, यह ग्याभिन बकरियों में भी लगाया जा सकता है। खरीदने के बाद टीके को बर्फ के अन्दर लेकर आएं एवं जितना जल्दी हो सके उपयोग कर लें। एक बार घोल बनाने के बाद इसे पूरा उपयोग कर लें।
- स्वस्थ बकरियों को ही टीका लगवायें। जानवरों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने से 15–20 दिन पहले टीका लगाएं। तीन साल बाद पुन: टीकाकरण करवाएं।
- बीमार जानवरों को तुरंत स्वस्थ जानवरों से अलग कर दें। बीमार जानवरों को खेतों में चरने न ले जाएं।
- मृत जानवर को गहरा गड्डा खोदकर गाड़ दें।
- नये खरीद कर लाये गये जानवरों को तीन सप्ताह तक पहले से उपलब्ध जानवरों के साथ न रखें। बाड़े में जानवरों की संख्या सीमित रखें।

बकरी– चेचक

बकरी– चेचक रोग बकरियों की सभी अवस्था में होता है लेकिन इससे छोटे बच्चे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

लक्षण:

- शरीर की चमड़ी पर चेचक रोग के चकत्ते/दाने मुख्य रूप से कान, होंठ व थूथन जिन स्थानों की चमड़ी बाल रहित होती है, पर पाये जाते हैं।
- रोग बढ़ने पर निमोनिया हो जाता हैं और मृत्यु भी हो सकती है।

बचाव के उपाय :

- इस रोग से बचाव हेतु बकरी चेचक का टीका लगवाया जाता है। तीन–चार महीने की उम्र के मेमनों को प्रारम्भिक टीका (1 मि.ली.) खाल में नीचे लगाते हैं, फिर यह टीका प्रतिवर्ष लगाया जाना चाहिए।
- बकरी पालकों को यह समझना चाहिए कि वे भेड़ चेचक के टीके का प्रयोग बकरियों में चेचक से बचाव के लिए नहीं कर सकते।
- इस रोग की रोकथाम के लिए बीमार बकरियों को स्वस्थ बकरियों से अलग रखना चाहिए। बीमार बकरियों के रहने का स्थान साफ–सुथरा व हवादार होना चाहिए।

खुरपका–मुँहपका रोग (एफ.एम.डी.)

यह रोग एक विषाणु के कारण होता है तथा गाय–भैंस, भेड़–बकरी, शूकर व खुर वाले पशुओं में तीव्रता से फैलता है।

रोग के लक्षण :

- इस बीमारी में जीभ, मसूड़ों व थनों में छोटे आकार के फफोले हो जाते हैं।
- पशु के खुरों में भी फफोले हो जाते हैं जो बाद में फट कर घाव बन जाते हैं, जिससे पशु लंगड़ाकर चलने लगता है। थन के फफोले के कारण कभी–कभी थनैला रोग भी हो जाता है, जिससे पशु के थन खराब हो जाते हैं।
- पशु को तेज बुखार आता है और पशु जुगाली करना बंद कर देता है।
- दुर्बलता और उत्पादकता में कमी, मुँह से लार गिरना और भूख न लगना।
- मेमनों में यह बीमारी घातक रूप ले लेती है जिससे उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है।

बचाव के उपाय :

- इस रोग की रोकथाम हेतु पॉलीबेलेण्ट एफ.एम. डी. वेक्सीन (ओ.,ए., एशिया 1) का पहला टीका 3 माह की आयु पर, दूसरा टीका पहले टीकाकरण के 4-6 माह के बाद तथा इसके बाद वर्ष में दो बार लगवाना चाहिए।
- बीमार पशु को स्वस्थ्य पशु से अलग कर दें। खाने के लिए चावल की माढ़, दलिया, गुड़ के साथ देना चाहिए। बारीक कुट्टी एवं अन्य चारा भी दिया जा सकता है।
- रोगी पशु के मुँह और खुर को फिटकरी के घोल (10 ग्राम फिटकरी को 1 लीटर पानी में) अथवा लाल दवा (1 ग्राम को 1 लीटर पानी में) के घोल से दिन में 3-4 बार धोना चाहिए।
- पशु के मुँह में दिन में 2-3 बार बोरो-ग्लिसरिन का लेप अवश्य करना चाहिए।
- एन्टीबायोटिक दवाओं का प्रयोग रोग के प्रभाव को कुछ हद तक कम कर देता है।

गलाघोंटू रोग (एच.एस.)

यह रोग हिमोरेजिक सेप्टीसिमिया के नाम से भी जाना जाता है। यह जीवाणु से होता है। बरसात में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

रोग के लक्षण :

- पशु को तेज बुखार आता है और जुगाली करना बंद कर देता है।
- पशु खाना-पीना छोड़ देता है, सांस लेने में कठिनाई होती है जिससे पशु बेचैन हो जाता है।
- उचित समय पर उपचार न होने पर पशु की मृत्यु हो जाती है।

बचाव के उपाय :

- एच.एस. आईल एड्ज्यूवेंट वैक्सीन 6 माह के ऊपर की आयु के सभी पशुओं में लगवाना चाहिए।
- स्थानीय पशु चिकित्सक से संपर्क कर पशु का उपचार करवाना चाहिए। इसमें ऑक्सी-टेट्रासायक्लीन, सैल्फामैजाथीन एवं सल्फाडायमिडीन नामक एन्टीबायोटिक दवाएं अच्छा काम करती हैं।

- यह छूत का रोग है, बीमार जानवरों को तुरंत स्वस्थ्य जानवरों से अलग कर। उन्हें अलग से पानी व चारा दें। मृत जानवर को गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ दें।

इन्टेरोटाक्सीमिया / आँत्र विषाक्तता

इन्टेरोटाक्सीमिया को फड़किया रोग या आँत्र विषाक्तता भी कहते हैं। यह बकरियों को ग्रसित करने वाला एक प्रमुख रोग है। यह रोग सबसे स्वस्थ बकरे या बकरी को अपना शिकार बनाता है। अधिक अनाज या अच्छा चारा अधिक मात्रा में खाने से इस रोग के होने की संभावना बढ़ जाती है। यह रोग खान–पान में आकस्मिक बदलाव व तनाव के कारण होता है।

रोग के लक्षण:

- पेट में तेज दर्द, छटपटाहट, पाँव जमीन पर पटकना।
- कभी–कभी रोग की सघनता अधिक होने पर उपचार का समय ही नहीं मिल पाता है और बकरी रोग के लक्षण दिखाए बिना ही मर जाती है।

बचाव के उपाय :

- इस रोग का एन्टीबायोटिक दवाओं से उपचार किया जाता है।
- इस रोग से बचाव के लिये 3 महीने की आयु पर मेमनों के ई.टी. का टीका लगवाना चाहिए तथा पंद्रह दिन बाद बूस्टर लगवाना चाहिए। तत्पश्चात् यह टीका प्रतिवर्ष लगवाना चाहिए। रोग की बहुलता को देखते हुए यह टीका वर्ष में दो बार लगवाना चाहिए।
- खान–पान में कोई बदलाव अचानक न करें, कोई भी बदलाव धीरे– धीरे लाएं।

अन्त: परजीवी

संक्रामक रोगों के अतिरिक्त परजीवी, अन्त: परजीवी तथा बाह्य परजीवी पशु स्वास्थ्य व उत्पादकता को भारी क्षति पहुँचाते हैं। अत: अन्त: तथा बाह्य परजीविओं का प्रबंधन तथा उपचार अत्यन्त आवश्यक है। पशुपालक एवं किसान जानते हैं कि पशुओं के पेट में कीड़े पड़ जाते हैं जिसके कारण पशु खाना छोड़ देता है या पौष्टिक खान–पान के बावजूद भी कमजोर होता चला जाता है। कभी–कभी दस्त होने लगते हैं जिससे पशु का स्वास्थ्य गिरता चला जाता है और इससे पशु की उत्पादकता भी प्रभावित होती है। अन्त: परजीवी तीन प्रकार के होते हैं:–

1. चपटे कृमि– लीवर फलूक, एम्फिस्टोमस आदि जो घोंघों के माध्यम से फैलते हैं।
2. गोल कृमि– हिमोन्कस, टोक्सोकेरा।
3. फीता कृमि– मोनेजिया।

बचाव के उपाय :

- पेट के कीड़ों से बचाव के लिए वर्ष में 2-3 बार कृमिनाशक दवाओं जैसे–एलबैन्डाजोल, फेनबैंन्डाजोल, क्लोसेंन्टल इत्यादि का प्रयोग करें। यह दवाएं पशुचिकित्सक की सलाह के अनुसार दें। वर्षा ऋतु से पहले एवं बाद में दो बार इन कृमिनाशक दवाओं का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद होता है।
- तालाब के आसपास की घास को पशुओं को न चरने दें क्योंकि इसी पर संक्रामक परजीवी पनपते हैं। तालाब में बत्तख पालें, जो कि घोंघा खाना पसंद करती हैं। घोंघों के प्रकोप को कम करने के लिए तालाब के आसपास कॉपर सल्फेट का प्रयोग करें। पशु–शाला की प्रत्येक दिन साफ–सफाई करें और उसकी सतह पर चूने का छिड़काव करें। पशु–शाला की सतह की पुरानी मिट्टी को प्रत्येक छः माह बाद करीब आधा फीट निकाल दें और उसके स्थान पर नई स्वच्छ मिट्टी बिछा दें।

बाह्य–परजीवी

इनमें मुख्यतया किलनियाँ, जूं, मक्खियाँ व माइट आते हैं। ये पशु का खून चूसते हैं जिससे खून की कमी व अन्य बीमारियां हो जाने के कारण पशु उत्पादकता पर कुप्रभाव पड़ता है। बाह्य–परजीवीयों से ग्रसित पशु की खाल की कीमत भी बाजार में कम मिलती है। कभी–कभी पशु के शरीर में घाव भी हो जाते हैं, जिनमें मक्खियाँ अंण्डे दे देती हैं और अंण्डों से कीड़े पड़ जाते हैं। यह घाव कई दिनों तक ठीक न हो पाने के कारण पशु के उपचार पर खर्च ज्यादा होता है और उत्पादकता भी प्रभावित होती है।

बचाव के उपाय :

- बाह्य–परजीवीओं से बचाव के लिए वर्ष मे कम से कम दो बार परजीवी नाशक दवाओं जैसे– साइपरमैथ्रिन, डेल्टामैथ्रिन आदि से पशुओं को स्नान करवाना चाहिए। साइपरमैथ्रिन या डेल्टामैथ्रिन के 0.1 से 0.4 प्रतिशत अर्थात् एक लीटर पानी में 1 से 4 मिली लीटर दवा मिलाकर घोल बना लें और पशु को नहलाएं।
- नहलाने से पूर्व पशुओं को पानी अवश्य पिला लेना चाहिए।

- यह दवाएँ जहरीली होती हैं अत: इनका उपयोग सतर्कता व सावधानी से करनी चाहिए।
- पशुशाला की प्रत्येक दिन साफ–सफाई करें और उसकी सतह पर चूने का छिड़काव करें। पुरानी बिछावन यदि हो तो उसे बदलते रहें।

संक्रामक रोगों एवं परजीवियों से बचाव के लिए निम्नलिखित तालिका में टीकाकरण एवं सर्वांग स्नान का वार्षिक समय तथा उपयोगी कुछ बहुमूल्य रक्षक दवाओं का नाम एवं रक्षक अवधि दी जा रही है।

तालिका : बकरियों में टीकाकरण, कृमिनाशन एवं सर्वांग स्नान (डिपिंग) हेतु वार्षिक चक्र।

कार्य विवरण	उपचार की विधि	रक्षक दवा लगाने के समय पशु की आयु सीमा	सुरक्षा अवधि
1. टीकाकरण			
(क) पी.पी.आर.	पशु की खाल के नीचे	3 माह से ऊपर की बकरी	3 वर्ष तक
(ख) बकरी चेचक			1 वर्ष तक
(ग) इन्टोरोटाक्सीमिया			6 माह तक
(घ) खुरपका–मुँहपका रोग (एफ.एम.डी.)	शरीर के मांस वाले भाग में अथवा पशु की खाल के नीचे (उत्पादक कम्पनी के निर्देशानुसार)		6 माह तक
(ड) एच.एस.			6 माह तक
2. कृमिनाशक			
पेट के कीड़ों का नाशक	मानसून (वर्षा ऋतु) शुरू होने से पहले (जून–जुलाई) व बाद में (अक्टूबर) पिलाएं	सभी आयु वर्ग के पशु	वर्ष में दो बार
3. सर्वांग स्नान (डिपिंग)			
जूओं, किलनी, माइट आदि से बचाव हेतु	प्रथम बार जुलाई माह एवं दूसरी बार अक्टूबर माह में	3 माह से ऊपर के सभी आयु वर्ग के पशु	वर्ष में दो बार

राजस्थान के पशुपालक उपरोक्त तालिका के अनुसार स्वास्थ्य प्रबंधन करके अपने पशुओं को स्वस्थ एवं सुरक्षित रख सकते हैं तथा भारी आर्थिक हानि से बच सकते हैं।

अश्वों में प्रजनन प्रबंधन

संजय कुमार रवि, तिरुमला राव ताल्लुरी एवं राम अवतार लेघा

अश्वों के उचित देखभाल और अश्व के प्रजनन की जानकारी होना अश्वपालक के लिए जरूरी है जिससे कम खर्च में अधिक अश्व शिशु पैदा किये जा सकें, साथ ही मादा का स्वास्थ्य भी ठीक रहे। मादा अश्वों के अंडाशय में जब डिम्ब का बनना शुरू होता है, उसे यौवनारम्भ कहते हैं। अश्वों में यौवनारम्भ की आयु 2 से 2.5 वर्ष है। यौवनारम्भ मादा अश्वों में गर्भधारण की आवश्यकता को पूरा नहीं करते बल्कि एक मादा अश्व का इसके लिए शारीरिक रूप से परिपक्व होना भी आवश्यक है। अश्वों में परिपक्वता 3 से 3.5 वर्ष की आयु में आती है। परिपक्वता पूर्व गर्भ धारण से मादा अश्व में प्रसव के समय परेशानी और जननी या अश्व शिशु की मृत्यु, जननी की तंदुरुस्ती बिगड़ना और प्रौढ़ावस्था में उत्पादन शक्ति का गिर जाना जैसी समस्या हो सकती है। यह जानना जरूरी है कि वयस्क मादा अश्व ऋतुकालिक प्रजनक होते हैं जो साल के लंबे दिनों में ही प्रजनन करते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध के प्रदेशों में इनके प्रजनन का समय मार्च से लेकर अक्टूबर तक का होता है। मादा अश्वों में एक नियमित समय (19-24 दिन) पर मद काल की आवर्ती (Estrous Cycle) ग्याभिन होने तक होता है जिसके दौरान मादा अश्व 5 से 9 दिन (औसत 7 दिन) मद (Heat/estrus) में होती है। गर्म-सर्द ऋतुओं के परिवर्तन काल में मद के लक्षण रूक-रूक कर या कभी-कभी लंबे समय के लिए देखे जा सकते हैं, जबकि सर्दियों के समय शरीर में रासायनिक तत्व के अपर्याप्त स्त्राव के कारण इनमें प्रजनन या मद्काल की आवर्ती नहीं होती।

अश्वों में मद के लक्षणों की पहचान

मादा अश्वों में मद के लक्षणों की पहचान अन्य अश्व के प्रति और उसके स्वयं के व्यवहार में आए अचानक बदलाव से किया जा सकता है। मद में आये अश्व अन्य घोड़ी पर कूदने की कोशिश करती है। मद के समय मादा अश्व की गतिविधियां बढ़ जाती है और खड़ा रहने के लिए अपनी पिछली टांगो पर भार निरंतर बदलती है। नर अश्व या किसी बधिया अश्व के मौजूदगी में मादा अश्व अपनी शरीर के पिछले हिस्से को उसके तरफ घुमाकर खड़ी होती है और शरीर के मध्य भाग को जमीन के तरफ झुकाती है। मद के समय मादा अश्व अपेक्षाकृत थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पेशाब करती हैं तथा बार-बार भग-शिश्न (Clitoriss) प्रदर्शित करती है। मद में पशु के योनि-मुख और आस-पास एक चिपचिपा द्रव्य लगा हो सकता है। मद में आने के लक्षण एक साथ या अलग-अलग भी दिख सकते हैं। गर्भ के प्रारंभिक दौर में भी कुछ मादा अश्व मद के लक्षण दिखाती है।

चित्र: नर अश्व के मौजूदगी में मद के लक्षण प्रदर्शित करती घोड़ी

गर्भाधान का उचित समय

मद के समाप्त होने से 1-2 दिन (24-36 घंटे) पहले मादा अश्व अंडाशय में बने डिम्ब से अंडा निस्तारित करती है। डिम्ब से अंडा निस्सारित होने के 12 घंटे पहले से लेकर 6-8 घंटे बाद तक गर्भाधान कराने का सही समय होता है, जबकि नर अश्व से प्राकृतिक मिलान का समय मद के पाँचवें और सातवें दिन उपयुक्त है। नर अश्व से प्राकृतिक मिलान या कृत्रिम गर्भधान द्वारा मादा अश्व के जनन अंगों में पहुँचे सशक्ति प्राप्त शुक्राणुओं में से कोई एक शुक्राणु निस्तारित अंडे के साथ निषेचन करता है। यदि निषेचन सफल रहा तो भ्रूण बनता है और गर्भाशय में पहुँच कर गर्भाशय से सम्बन्ध स्थापित कर धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। यदि गर्भाधान असफल रहा तो मादा अश्व 19 से 24 दिन के बाद फिर से मद में आ जाती है। कभी-कभी गाभिन मादा अश्व भी मद में आने के लक्षण दिखाती है जो सामान्य है। सामान्यत: मादा अश्व ब्याने के 8-15 दिन बाद भी मद (Foal heat) में आती है।

ग्याभिन अश्व की देखभाल

ग्याभिन मादा अश्व को गर्मियों में ठंडे और छायादार जगह पर तथा सर्दियों में शीतलहर से बचाव के लिए घुड़साल के अंदर रखना चाहिए। ग्याभिन मादा अश्व को एक ही जगह पर बांधकर या तंग जगह पर न रखें। गर्भकाल के दौरान हल्का व्यायाम, संतुलित एवं पौष्टिक आहार (हरा एवं सूखा चारा, दाना, खनिज मिश्रण और नमक सहित) देना होता है। हरा चारे में रिजका, लोबिया, बरसीम, मक्का, ज्वार, बाजरा व् सूखा चारे में जौ, जई, ज्वार, मोठ, मक्का, बाजरा और दाने में चना, जौ, गेहूँ का चोकर इत्यादि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त हाथी घास, दूब घास, अंजन घास, सेवन घास आदि भी

चारे के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। ग्याभिन पशुओं को बरसीम ज्यादा नहीं खिलाना चाहिए क्योंकि इसमें मौजूद एस्ट्रोजेन नामक जैव–रसायन गर्भपात का कारण बन सकता है। हरा व सूखा चारे का अनुपात 1:3 रखना चाहिए। दाने का मिश्रण तैयार करने के लिए जौ, चना, गेहूँ का चोकर और खनिज मिश्रण को क्रमश: 4:3:2.7:0.3 के अनुपात में मिलाएं। गर्भकाल के पहले आठ महीनों के दौरान घोडियों में नियमित दिया जाने वाला खाना (लगभग 9 किलो चारा और 4 किलो दाना प्रति वयस्क) ही प्रयाप्त होता है, जबकि गर्भ के नवें, दसवें एवं ग्यारहवें महीने के दौरान यह नियमित खाने की मात्रा का क्रमश: 1.11, 1.13 एवं 1.20 गुणा होनी चाहिए। पानी पीने की स्वतंत्रता इच्छानुसार होनी चाहिए। गर्भधारण के वजह से इनके खाने–पीने, व्यायाम व इनसे लिए जाने वाले दैनिक कार्यो में अचानक बदलाव नहीं किये जाने चाहिए। ग्याभिन मादा अश्व के शारीरिक स्थिति और स्वास्थ्य को देखते हुए, इनके व्यायाम और इनसे लेने वाले कार्य 7 से 9 महीने के गर्भ तक धीरे– धीरे कम कर दें। प्रसव के 5–6 सप्ताह पूर्व किसी भारी कार्य या घुड़सवारी के लिए मादा अश्व का प्रयोग नहीं करें। गर्भकाल में होने वाली बीमारियों (टेटनस, ई.एच.वी., रेबीज, इंफ्लुएंजा इत्यादि) से बचाव के लिए नियमित समय पर टीकाकरण कराएं। ई.एच.वी.–1 से होने वाले गर्भपात से बचने के लिए गर्भकाल के 5वें, 7वें व 9वें महीने में इसका टीका लगवाना लगवाएं। साल्मोनैला जीवाणु द्वारा होने वाले गर्भपात से से बचाव के लिए गर्भ के 9वें महीने में इसका टीका लगवाएं। इंफ्लुएंजा और टेटनस से बचाव के लिए गर्भकाल पूरा होने के 30 दिन पहले टीका लगवाएं। गर्भकाल के अंतिम महीने में परजीवी नियंत्रण हेतु बिना पशुचिकित्सक की सलाह के कोई दवा न खिलाएं–पिलाएं।

प्रसव के दौरान अश्व और अश्व शिशु प्रबंधन

मादा अश्व में गर्भकाल औसतन 345 दिन का होता है। प्रसव के समय उचित व्यवस्था एवं देखभाल सुनिश्चित करने हेतु तथा जरूरत पड़ने पर पशुचिकित्सक की सेवा ली जा सके। इसके लिए प्रसव की संभावित तारीख की गणना कर लें। प्रसव का समय नजदीक आने पर पशु को खुले, हवादार जगह में रखें। साथ ही यह भी ख्याल रखना चाहिए कि आमतौर पर मादा अश्वों में प्रसव रात्रि समय होता है और इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्ति की उपस्थिति, बिजली व अन्य सामग्री की व्यवस्था रखनी चाहिए। प्रसव के समय से 2–3 सप्ताह पहले थन के आकार में वृद्धि दिखाई देने लगती है और 6–48 घंटे पहले चुसनी पर गाढ़ा पदार्थ जमने लगता है। समय के बिलकुल नजदीक आते–आते मादा अश्व में व्यग्रता (पूँछ में ऐंठन, बार–बार उठना और बैठना) और विकलता दिखाई देने लगती है। आमतौर से बच्चे के जन्म में मादा अश्व 20 मिनट का समय लगाती है। प्रसव के दौरान बच्चे के ऊपर से झिल्ली न फटी हो तो बिना देर किये उसे हटाना चाहिए जिससे बच्चा साँस ले सके। बच्चे के जन्म लेते ही साफ और मुलायम कपड़े से उसके नाक और मुँह साफ कर फिर सारे शरीर को पोछना चाहिए। सामान्यत:

नाभि सूत्र अपने आप टूट जाती है। अगर नाभि सूत्र जुड़ी हुई हो तो नाभि से 3-4 इंच छोड़कर नए ब्लेड से काट दें और कटे हुए नाभि पर द्रव्य आयोडीन लगायें। नवजात को पैरों पर पूरी तरह से खड़े होने में लगभग 1 घंटे का समय लग जाता है। यदि घोड़ी एक घंटे तक जेर न निकाले तो पशुचिकित्सक की सलाह लें। प्रसव के तुरंत बाद से 12 घंटे के अंदर-अंदर (2-3 घंटे तक) बच्चे को खींस पिलाना आवश्यक है। खींस में मौजूद तत्व बच्चों में बीमारियों से लड़ने की क्षमता को विकसित करते हैं।

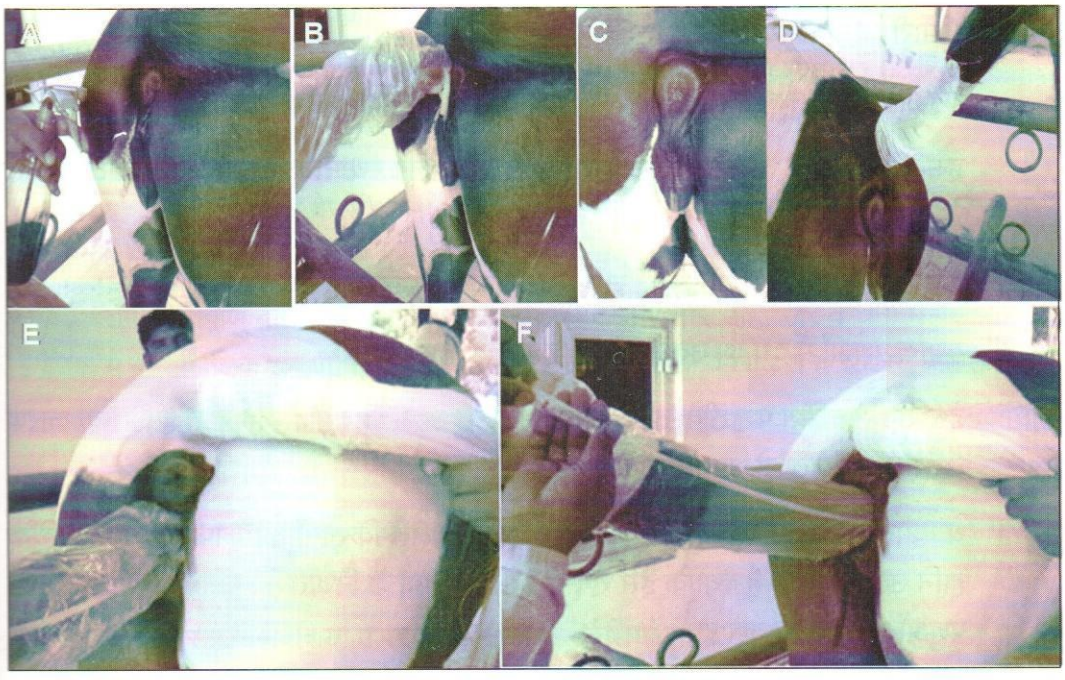

मादा अश्व में कृत्रिम गर्भाधान

पशुओं में खुरपका–मुँहपका रोग : एक परिचय

जे.पी. कछावा

रोग का परिचय

- यह बहुत तेजी से फैलने वाला छुआ–छूत एवं संक्रामक रोग है जो कि गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, सूअर आदि पशुओं में होता है। विदेशी व संकर नस्ल रोग की गायों में यह बीमारी अधिक पायी जाती है।
- यह अत्यधिक सूक्ष्म विषाणु (वायरस) से पैदा होने वाली पशुओं की बीमारी है।
- इस बीमारी को अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग स्थानीय नामों से जाना जाता है जैसे खुरपका–मुहंपका, चपका, खुसाड, खुसाड़ी आदि।
- इस रोग से ग्रसित पशुओं में मुँह, जीभ, थनों, गादी एवं खुरों के बीच छाले हो जाते हैं।
- दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन बहुत कम हो जाता है।
- इस रोग से ग्रसित पशु ठीक तो हो जाते हैं, परन्तु अत्यन्त कमजोर हो जाते हैं जिसके कारण उनका पूर्ण क्षमता से उपयोग नहीं हो पाता।
- ये बीमारी भारत में काफी पाई जाती है व इसके चलते किसानों को काफी अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ती है क्योंकि इस रोग से ग्रसित पशुओं के निर्यात पर प्रतिबन्ध है और बीमार पशुओं से उत्पादन कम होता है।

रोग का कारण

- मुँहपका–खुरपका रोग एक अत्यन्त सुक्ष्म विषाणु के कारण होता है।
- यह रोग विश्वव्यापी है, जिसके अनेक प्रकार तथा उप–प्रकार है जैसे ओ, ए, सी, एशिया–1, सैट–1, सैट–2 एवं सैट–3।
- हमारे देश मे यह रोग मुख्यतः ओ, ए तथा एशिया–1 प्रकार के विषाणुओं द्वारा होता है।
- नम–वातावरण, पशु की आन्तरिक कमजोरी, पशुओं तथा लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन तथा नजदीकी क्षेत्र में रोग का प्रकोप इस बीमारी को फैलाने में सहायक कारक हैं।

संक्रमित पशु

यह बहुत तेजी से फैलने वाला छुत का रोग है जो कि गाय, भैंस, भेड़, बकरी, याक, ऊँट, सूअर आदि घरेलू पशुओं में पाया जाता है।

- विदेशी व संकर नस्ल रोग की गायों को यह बीमारी अधिक गम्भीर रूप से प्रभावित करती है।
- यह बीमारी जंगली पशुओं जैसे हिरण, नीलगाय, बारहसिंगा, जिराफ, मिथुन, एवं जंगली सूअरों आदि में भी पाई जाती है।
- मुँहपका–खुरपका रोग किसी भी उम्र की गायें एवं उनके बच्चों में हो सकता है।

संक्रमण विधि

- यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने, पानी, घास, दाना, बर्तन, दूध निकलने वाले व्यक्ति के हाथों से, हवा से तथा लोगों के आवागमन से फैलता है।
- रोग के विषाणु बीमार पशुओं के उत्सर्जन व स्राव जैसे लार, मुँह, खुर व थनों में पड़े फफोलों में बहुत अधिक संख्या में पाए जाते हैं तथा इनके उत्सर्जन व स्राव से ये वायरस फैलते हैं।
- ये वायरस एक स्थान से दूसरे स्थान पर हवा द्वारा फैलता है व जब हवा में नमी ज्यादा होती है तब इसका प्रसार और तेजी से होता है।
- ये खुले में घास, चारा, तथा फर्श पर चार महीनों तक जीवित रह सकते हैं लेकिन गर्मी के मौसम में यह बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं।
- संकर नस्ल के मवेशियों में स्थानीय नस्ल के मवेशियों से जल्दी संक्रमण होता है।
- ये बीमारियाँ, पशुओं के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन से भी फैलती है।
- विषाणु जीभ, मुंह, आंत, खुरों के बीच की जगह, थनों तथा घाव आदि के द्वारा स्वस्थ पशु के रक्त में पहुंचते हैं तथा लगभग 5 दिनों के अंदर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं।

रोग के लक्षण

- रोगी पशु को एक से दो दिन तक 104–105° फा. बुखार हो जाता है।
- दूध देने वाले पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी आ जाती है जिससे पशु पालक को बहुत ज्यादा आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।
- पशु के मुँह के अंदर, गालों, जीभ, होंठ, तालू व मसूड़ों के अंदर, खुरों के बीच तथा कभी–कभी थनों पर छाले पड़ जाते हैं।

- छालों के कारण मुँह से लार बहने लगती है तथा मुंह हिलाने पर चप–चप की आवाज आती हैं।
- मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना–पीना बन्द कर देते हैं जिससे वह बहुत कमजोर हो जाता है।
- खुरों में दर्द के कारण पशु लंगड़ाकर चलने लगता है।
- पशुओं की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है और गर्भवती पशु में कई बार गर्भपात हो जाता है।
- नवजात बछड़े बिना किसी लक्षण दिखाए मर जाते हैं हालांकि वयस्क पशु में इस बीमारी से मृत्यु नहीं होती।
- कभी–कभी पशु के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं तथा कई बार खुरों के कवच भी निकल जाते हैं।
- बैलों में भारी काम करने की क्षमता खत्म हो जाती हैं।

उपचार

- इस रोग का कोई निश्चित उपचार नहीं है लेकिन बीमारी की गम्भीरता को कम करने के लिए लक्षणों के आधार पर पशु का उपचार किया जाता है।

घरेलु उपचार

- रोगग्रस्त पशु के पैर को नीम एवं पीपल के छाले का काढ़ा बना कर दिन में दो से तीन बार धोना चाहिए। या एक मुट्ठी खाने के सोडा को एक बाल्टी पानी में मिलाकर घोल बनाएँ। इस घोल से मुंह व खुर को दिन में कम से कम पाँच बार साफ करें।
- साफ करने के बाद तेल या घी में कत्था के पाउडर का मिश्रण बनाकर घाव पर लगाएँ। या शहद और बोरिक पाउडर का मिश्रण बनाकर घाव पर लगाएँ।
- पशुओं को सुखा चारा न खिलाएँ बल्कि हरी कोमल घास या मुलायम एवं सुपाच्य चारा खिलाएँ।

प्राथमिक उपचार

- रोगी पशु के मुंह और पैर को 1 प्रतिशत लाल दवा (पोटैशियम परमैंगनेट) के घोल से धोना चाहिए। इन जख्मों पर एन्टीसेप्टिक लोशन लगाया जा सकता है। अथवा पैरों के छालों को फिनाइल–युक्त पानी से दिन में दो–तीन बार धोकर मक्खी को दूर रखने वाले मलहम को लगाना चाहिए।
- मुँह के छाले को 1 ग्राम फिटकरी 100 मिलीलीटर पानी में घोलकर दिन में तीन बार धोना चाहिए।

- रोगी पशु में बैक्टीरिया के संक्रमण को रोकने के लिए उसे पशु चिकित्सक के परामर्श पर एंटीबायोटिक दवा देनी चाहिए।

रोग से बचाव

- इस रोग में भी पशुपालकों को ''इलाज से बेहतर बचाव'' होता है' के सिद्धांत पर चलना चाहिए।
- रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
- बीमार पशुओं की देख–भाल करने वाले व्यक्ति को स्वस्थ पशुओं से दूर रहना चाहिए।
- बीमार पशुओं के आवागमन पर रोक लगा देना चाहिए।
- स्वस्थ प्राणियों को संक्रमित क्षेत्रों में नहीं भेजा जाना चाहिये।
- किसी भी संक्रमित क्षेत्र से जानवरों की खरीदारी नहीं की जानी चाहिये।
- नये खरीदे गए जानवरों को अन्य जानवरों से एक महीने तक दूर रखना चाहिये।
- इस बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर गाढ़ देना चाहिए।

टीकाकरण–इस बीमारी से बचाव के लिए पशुओं को खुरपका–मुहपका के टीके वर्ष में दो बार अवश्य लगवाने चाहिए।

- बछड़ों को पहला टीका 4 माह की आयु में और उसके बाद नियमित हर 6 माह में लगाए जाने चाहिए।
- ये टीकाकरण कार्यक्रम मवेशी, भेड़, बकरी व सूअर, सभी के लिये लागू हैं।

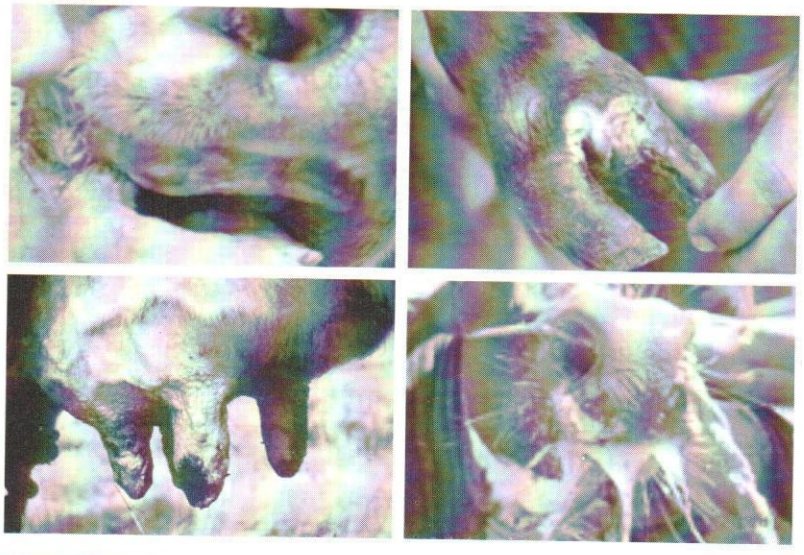

पशुओं में वानस्पतिक व रासायनिक विषाक्तता: लक्षण, उपचार एवं बचाव

अमिता रंजन

1. वानस्पतिक विषाक्तता

ऐसे पौधे एवं पौधों का समूह, जिनमें हानिकारक व जहरीले क्रियाशील रसायन होते हैं एवं जिनके सेवन से पशुओं पर हानिकारक या विषकारी प्रभाव पड़ता है, उन्हें विषाक्त पौधों की श्रेणी में रखा जाता है। सामान्य अवस्था में यथा उच्च कोटि के हरे चारे की उपलब्धता होने पर पशु इन अवांछित पौधों को नहीं खाते, परन्तु अकाल, सूखे की स्थिति एवं चारे की कमी होने पर विषैले पौधों के घातक रसायन पशुओं के शरीर में चले जाते हैं। अन्य कारणों में जानबूझ कर, भूलवश या दुर्घटनावश पशु के आहार में इनकी मिलावट होने से जानवर विषाक्तता के शिकार हो सकते हैं।

राजस्थान के मरु प्रदेश होने के कारण पशुओं में निरंतर हरे चारे की उपलब्धता संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में इन प्रदेशों में आसानी से उपलब्ध विषैले पौधों जैसे सुबबूल, ऑक, कनेर, मदार, लैंटाना, रत्ती, सत्यानाशी, गाजर (कांग्रेस) घास, रतनजोत (जट्रोफा), धतूरा, अरण्डी आदि का सेवन जानवरों को संकट की स्थिति में ला देता है व किसानों एवं पशुपालकों को अपनी पशु संपदा से वंचित होना पड़ता है।

विषाक्त पौधों का पशुओं पर कुप्रभाव या लक्षण

हलांकि विभिन्न श्रेणियों के विषाक्त पौधों का सेवन करने पर पशुओं में भिन्न–भिन्न प्रकार के लक्षण स्पष्टतया कम ही परिलक्षित होते हैं। आम तौर पर उल्टी होना, दस्त की समस्या, कोलिक (पेट दर्द) की स्थिति, आफरे, कब्ज की परेशानी, चर्म रोग या खुजली होना इत्यादि प्रभाव दिखाई देते हैं। कभी–कभी आँखों की पुतलियों का फैलना, लार का श्राव होना या पीलिया के लक्षण भी दिखाई दे सकता है। गंभीर अवस्था में पशुओं में उत्तेजना की स्थिति, शरीर में कम्पन होना, जमीन पर लेट जाना, बेचैनी से हांफना एवं नाडी–दर, श्वसन–दर में गिरावट भी देखा गया है। घातक परिस्थितियों में पक्षाघात या हृदय–गति के रुक जाने से पशुओं की मृत्यु भी संभव है।

निम्नांकित टेबल में विषाक्त पौधों के सेवन से होने वाले सम्भावित कुप्रभावों को दर्शाया गया है–

क्र.सं.	वनस्पतियों (विषैले) के नाम	संभावित लक्षण व कुप्रभाव
1.	अब्रस प्रिकाटोरियस (रत्ती, चिरमी)	आंतों में ऐठन, उल्टी, दस्त, कमजोरी, पैरों में कम्पन

क्र.सं.	वनस्पतियों (विषैले) के नाम	संभावित लक्षण व कुप्रभाव
2.	अर्जीनिया इंडिका (जंगली कांदा)	उल्टी, मूत्र में रक्त आना, पैरालिसिस, हृदयाघात
3.	आर्जीमोन मेक्सीकाना (सत्यानाशी, मेक्सिकन पॉपी)	उल्टी, दस्त, उनींदी की अवस्था
4.	कसकटा रिलेक्सा (अमरबेल)	उल्टी, गर्भपात, मृत्यु (मेलिसियस पॉइजनिंग के लिए दुरूपयोग)
5.	काथारेन्थस पुसिलस (जंगली बारामासी)	गौवंशों में त्वचा पर रैशज आना, अंधापन आना, पागलपन की स्थिति
6.	काथारेन्थस रोसिअस (बारामासी)	हृदय को नुकसान पहुंचना
7.	जट्रोफा करकस (रतनजोत / जंगली बादाम)	इसके लेटेक्स (दूध) आँखों के लिए हानिकारक (अंधापन)
8.	केलोट्रोपिस प्रोसेरा (मदार)	बीज दस्तकारी , उल्टीकारक, पेट में जलन, अत्यधिक मात्रा में सेवन से बेहोशी
9.	धतूरा अल्बा (धतूरा)	गले में सूखापन, आवाज में कम्पन, रोशनी का कम हो जाना, कोमा की स्थिति
10.	नेरियम इंडिकम (लाल कनेर)	हृदय पर कुप्रभाव, मृत्यु (मेलिसियस पॉइजनिंग के लिए दुरूपयोग)
11.	पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस (गाजर घास)	एक्सिमा, एलर्जी, पेट अमाशय आंत वृक्क व यकृत में अल्सर
12.	मोरिंगा ऑलीफेरा (सहजन)	त्वचा रोग, गर्भपात
13.	रिसिनस कोम्मुनिस (अरण्डी)	उल्टी, पेट में दर्द, सर्कुलेटरी कोलैप्स
14.	लैंटाना कमारा (पंचफुली, घनेरी)	त्वचा का सूर्य की किरणों के प्रति संवेदनशील होना,लार का अत्यधिक श्रवण, आंसू का गिरना, भूख में कमी, यकृत पर कुप्रभाव

प्रभावित पशुओं का उपचार

जहरीले पौधे के सेवन से ग्रस्त पशुओं का उपचार शीघ्रातिशीघ्र कराना आवश्यक है अन्यथा पशुपालक अपनी पशु रूपी संपदा से वंचित हो सकते हैं। विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के विषाक्त लक्षणों का उपचार भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है, परन्तु मूलतया लक्षणों पर आधारित चिकित्सा द्वारा प्रभावित पशुओं को फौरी राहत प्रदान कर सकते हैं। इलेक्ट्रोलाइट, फ्लूइड थेरेपी, परगेटिव (मैग्नीशियम सलफेट, अरण्डी का तेल, मिनरल आयल), लेक्जेटिव (लिक्विड पैराफिन), वमनकारी औषधि (अपोमोर्फिन, उच्च सांद्रता वाले नमक के घोल का मिश्रण आदि) चिकित्सक के उचित परामर्श के बाद दिया जाना चाहिये। साँस लेने में तकलीफ की अवस्था में ऑक्सीजन थेरेपी या कृत्रिम साँस द्वारा उपचार संभव है, साथ ही रक्त की कमी की अवस्था में रक्त ट्रांसफ्यूजन भी अच्छा विकल्प साबित हो सकता है। गैस्ट्रिक लैवाज भी विषैले वनस्पतियों के जहरीले प्रभावों को खत्म करने में सहायक है। हालाँकि यूनिवर्सल एन्टीडॉट के रूप में एक्टिवेटिड चारकोल एक प्राचीन औषधि है, जिसका सेवन 5 ग्राम प्रति किलो शारीरिक भार या 2.5 किलोग्राम पाउडर को 20 लीटर इलेक्ट्रोलाइट के घोल में मिलाकर स्टमक-ट्यूब से दिया जाना वयस्क गौवंशों के लिए उचित है। मूत्रविसर्जक या डायुरेटिक (लेसिक्स) का प्रयोग भी विषकारी प्रभावों को कम करने में सहायक है।

बचाव

विषाक्त वनस्पतियों के सेवन से पशुओं को बचाने हेतु उन्हें अच्छे चारे की उपलब्धता का विशेष ध्यान रखना होगा। पशुओं को खूंटे पर चराई कराना एक अच्छा विकल्प है क्योंकि उच्च कोटि के चारे की कमी होने से पशु अवांछित एवं अनुपयोगी पौधों को खा लेते हैं एवं बीमार हो जाते हैं। दूसरे प्रमुख पहलूओं में सूखे या अकाल की स्थिति का सामना होने पर पशु भूखमरी की अवस्था में पहुँच जाते हैं एवं जहरीले पौधों का भक्षण कर लेते हैं। इस परिस्थिति से बचने के लिए पशुपालकों को पूर्व निर्धारित योजना के तहत 'हे' व 'साईलेज' का उत्पादन कर, उसे संग्रहित कर, विषम परिस्थितियों के लिए तैयार रखना चाहिए। पूर्वानुमानित मौसम के अनुसार कृषि-पद्धति में सामयिक बदलाव करना लाभदायक सिद्ध होता है, जिससे चारे की उपलब्धता में निरंतरता बनी रहे। ऐसा देखा गया है कि वर्षा-ऋतु में प्रचुर जल की उपलब्धता के कारण पशुओं के लिए आवश्यकता से अधिक चारे का उत्पादन कर लिया जाता है, अत: इन्हें भविष्य के लिए सही रूप से संरक्षित करने की आवश्यकता है। 'चारा-बैंक' के रूप में अतिरिक्त चारे को एकत्रित कर सामुदायिक व्यवस्था के अंतर्गत बड़े स्तर पर योजना को क्रियान्वित किया जाना एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। कभी-कभी खाद का अधिकाधिक प्रयोग उत्तम कोटि के चारे को भी विषाक्त वनस्पतियों की श्रेणी में ला देते हैं, अत: इनसे बचने की जरूरत है।

2. रासायनिक विषाक्तता

किसान भाई अक्सर अपने कृषि एवं घरेलू कार्यो में कई ऐसे रसायनों का उपयोग करते हैं जिनके संपर्क में आने या पशु के आहार नाल में प्रवेश करने से पशु बीमार हो सकते हैं या उनकी मृत्यु तक हो सकती है। ऐसे रसायनों में मुख्यत: कीटनाशक आते हैं। कीटनाशक (यथा ओर्गनोफोसफोरस एवं कार्बामेट) विभिन्न रूपों में (स्प्रे, पाउडर, डीप, ग्रैनुल्स आदि) उपलब्ध हैं, एवं कृषि व बागवानी में कीटों के नियंत्रण में अहम भूमिका अदा करते हैं। पशुओं पर उसके विषैले प्रभाव त्वचा, मुँह इत्यादि किसी भी मार्ग द्वारा शरीर में प्रवेश करने पर दिखाई पड़ता है।

लक्षण, उपचार व बचाव

विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों की विषाक्तता के लक्षण क्रमोबेश एक समान ही होते हैं। इन लक्षणों में अत्यधिक लार का गिरना, आँखों से पानी बहना, बार बार पेशाब करना, साँस लेने में कठिनाई होना, आँखों की पुतलियों का सिकुड़ना, हृदय–गति की दर का कम होना प्रमुख है। कुछेक मामलों में मांसपेशियों में कमजोरी, ट्रेमर्स एवं सीजर्स भी दिखाई देते हैं। पीड़ित पशुओं को जल्द–से–जल्द चिकित्सा मुहैया कराना अनिवार्य है। उपचार कीटनाशकों के रासायनिक गुण तथा लक्षणों की तीव्रता पर निर्भर करता है। लैब की जाँच में रक्त में 'एसीटाइल कोलिन एस्ट्रेज' एंजाइम के स्तर की कमी विषाक्तता का एक प्रमुख संकेतक है। अट्रोपिन सल्फेट एवं औक्जाएम का सही व संतुलित इस्तेमाल किसी कुशल चिकित्सक से कराना चिकित्सा की दृष्टी से सही कदम होगा।

बचाव हेतु जानवरों की निगरानी करना आवश्यक है। कीटनाशक युक्त फसलों को अच्छी तरह धोकर एवं उचित जांच करके ही पशुओं को दिया जाना चाहिए। प्रयुक्त कीटनाशकों के खाली डिब्बों को जानवरों की पहुंच से दूर रखना चाहिए।

यूरिया की विषाक्तता

पशुपालक एवं किसानों द्वारा यूरिया का उपयोग फसलों में उर्वरक व जानवरों के राशन में फीड सप्लीमेंट के रूप में किया जाता है। सम्पूर्ण राशन का 2–3% भाग यूरिया के रूप में दिया जाना जुगाली करने वाले पशुओं में अपेक्षित है, परन्तु कभी–कभी यूरिया–मोलासेस मिक्सचर का जरूरत से ज्यादा प्रयोग या गीले यूरिया पूरकों का उपयोग एवं अनावश्यक रूप से पशु द्वारा यूरिया उर्वरक की बोरी को चाटने के कारण यूरिया विषाक्तता के लक्षण जानवरों में परिलक्षित होते हैं।

लक्षण, उपचार एवं बचाव

यूरिया विषाक्तता के प्रारंभिक लक्षणों में पेट–दर्द, आफरे की स्थिति, पेट का फूलना, तेजी से

साँस लेना, कमजोरी एवं अंतत: हिंसक प्रवृति के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। यूरिया विषाक्तता से प्रभावित पशुओं का शीघ्रता से इलाज जरुरी है। पेट फूल जाने या आफरे की स्थिति में रूमेण द्वारा गैस को निष्कासित किया जाना महत्वपूर्ण है। इसे ट्रोकार–कैनुला या स्टमक–ट्यूब द्वारा सरलता से किया जाता है। प्रभावित व्यस्क पशुओं को ठण्डे पानी (4–5 लीटर) एवं तनु एसीटिक अम्ल (विनेगर 5% 2–6 लीटर) को मिश्रित कर सेवन कराने से लाभ मिलता है। बचाव के तौर पर पशुओं को शुरूआती स्तर से क्रमवार रूप से (अर्थात बढ़ते हुए क्रम से) यूरिया–मोलासेस का सेवन कराना चाहिए। गीले यूरिया पूरकों के इस्तेमाल पर भी निगरानी जरुरी है।

निष्कर्षत पशुओं को विषाक्तता से बचाने हेतु पशुपालकों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि पशु–संपदा जाने–अनजाने अपनी जान से हाथ न धो बैठें एवं किसानों को आर्थिक क्षति का सामना न करना पड़े। कीटनाशक छिडकावित चारों को पूर्णतया धो कर व आश्वस्त होने के पश्चात् ही पशुओं को दें। बाहर से आयातित चारों को मिलावट–रहित एवं फफूंद–रहित होने की परख जरुरी है तभी पशुओं निरोगी एवं स्वस्थ बने रहेंगे।

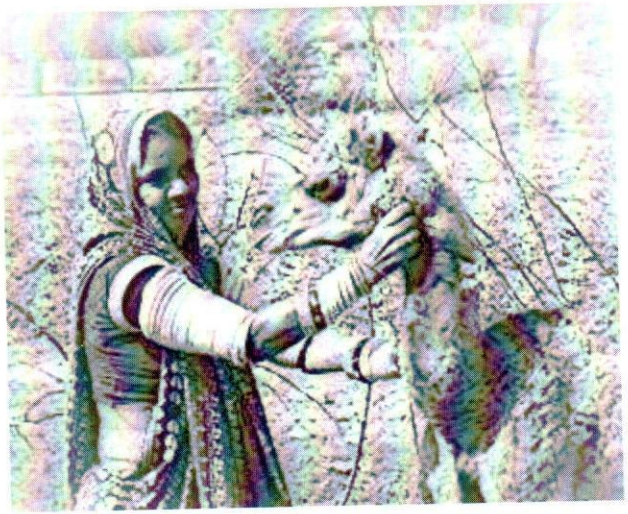

खनिज तत्व : पशु स्वास्थ्य व उत्पादन में सहायक

शीला चौधरी

हमारे देश में पशुओं को खिलाये जाने वाले चारे व दानें में खनिज तत्वों की मात्रा सामान्य से कम होती है जो पशु शरीर के लिए आवश्यक खनिज तत्वों की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होते हैं। खनिज तत्व पशु आहार के अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। शरीर की संरचना एवं विभिन्न कार्यो को संचालित व नियमित करने के लिये विभिन्न खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है। पशु आहार के विभिन्न पोषक तत्वों में से खनिज तत्व ही ऐसे पोषक तत्व हैं जिनका शरीर में निर्माण नहीं होता है। अत: खनिज तत्वों का पशु आहार में विशेष स्थान है।

खनिज तत्वों का वर्गीकरण

खनिज तत्वों को शरीर में आवश्यकता के अनुसार दो भागों में विभाजित किया गया है :-

1. वृहद् तत्व : ये वे खनिज हैं जो शरीर में अधिक मात्रा में आवश्यक होते है। जैसे- कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्निशियम, सोडियम, क्लोरिन, पोटेशियम और सल्फर।
2. विरल तत्व : ये वे खनिज तत्व हैं, जिनकी बहुत कम मात्रा शरीर के उचित रखरखाव हेतु आवश्यकता होती है, जैसे लोहा, मैंगनीज, तांबा, कोबाल्ट, लोरिन, क्रोमियम, सैलेनियम आदि।

खनिज तत्वों के कार्य

- खनिज तत्व अस्थियों की बनावट, पाचन क्रिया, शारीरिक प्रक्रियाओं और मांस पेशियों की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है।
- ये विभिन्न ऊतकों के संघटक के रूप में कार्य करते हैं।
- खनिज तत्व शरीर के रासायनिक संघटन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।
- लाल रक्त कणिकाओं में उपस्थित हीमोग्लोबिन में खनिज तत्व लोहा होता है, यह हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन वाहक का कार्य करता है।
- रक्त का थक्का बनाने में।
- समस्थिति के रखरखाव में।
- उत्तक वृद्धि व मरम्मत में भी काम आते हैं।
- खनिज तत्व कोशिकाओं व झिल्लियों की पारगम्यता बनाए रखने में सहायता करता है।

- रक्त की पी.एच. मान को नियंत्रित करने में।
- खनिज तत्व एंजाइम के सक्रियण में सहायता करते हैं।
- शरीर द्रव्य के परासरण दाब के उचित रखरखाव में।
- उपापचय में खनिज तत्व एक सह एंजाइम की तरह कार्य करता है।
- खनिज तत्व शरीर में अम्ल–क्षार संतुलन बनाए रखते हैं।

कैल्शियम

कार्य

- हड्डियों व दांतों के निर्माण में सहायक होता है।
- रक्त के थक्का निर्माण में।
- हृदय गति के विनियमन में।
- अम्ल–क्षार संतुलन के रख रखाव में।
- तंत्रिका पेशी संबंधी प्रणाली का चिड़चिड़ापन के नियंत्रण में।
- कोशिका झिल्लियों की पारगम्यता के रख–रखाव में।
- भ्रूण के विकास के लिए।

कैल्शियम की कमी से होने वाले रोग

- बछड़ों में लम्बे समय तक कैल्शियम की कमी से वृद्धि दर में कमी हड्डियों का कमजोर होकर मुड़ जाना (रिकेटस)।
- दुधारू पशुओं के ब्याने के बाद दुग्ध ज्वर होना जिससे दूध देना बंद हो जाना।
- शरीर तापमान कम स्नायु कमजोरी से कंपकंपी होना।
- खड़े रहने में असमर्थता एवं पशु का अपनी काख सिर टिका कर बैठ जाना।
- अंडों का विकास रूक जाता है।
- बछड़ों की बढ़वार (वृद्धि) व विकास कमजोर हो जाता है।
- बच्चेदानी का संकुचन कमजोर हो जाता है, जिससे प्रसव के समय समस्या उत्पन्न होती है।

रोग से बचाव के उपाय

- दलहनी चारा देना।
- खनिज लवण मिश्रण देना।
- इन्जेक्शन द्वारा केल्शियम देना।

फॉस्फोरस

कार्य

- दाँत व हड्डी के निर्माण में सहायक होता है।
- शरीर की उर्जा उपापचय क्रियाओं व कई अन्य उपापचयी क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीकरण में सहायक होता है।
- कोशिका झिल्लियों की पारगम्यता के रख–रखाव में।

फास्फोरस की कमी से होने वाले रोग

- बढ़वार जानवर में रिकेट्स व वयस्क में अस्थि मृदुता रोग हो जाता है।
- इसकी कमी से पाइका रोग हो जाता है, जिससे पशुओं में भूख कम लगना, अखाद्य पदार्थो जैसे लकड़ियाँ, हड्डियाँ, कपड़ा, चमडा, मिट्टी आदि खाने की प्रवृति बढ जाती है।
- इसकी कमी से ऊर्जा उपयोग में गिरावट आती है।
- पशुओं की प्रजनन क्षमता घट जाती है।
- मदचक्र अनियमित हो जाता है।

रोग से बचाव के उपाय

- आहार में गेंहू की चापड़ देना।
- खनिज लवण मिश्रण देना।
- इन्जेक्शन द्वारा फॉस्फोरस देना।

पोटेशियम

कार्य

- अम्ल–क्षार संतुलन के रख रखाव में।
- परासरणी दाब के रखरखाव में।
- तंत्रिका संचरण में।
- हृदय की धड़कन के तनाव कम करने में।
- कुछ एंजाइम के सक्रियण में।
- कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन उपापचय में।

पोटेशियम की कमी से होने वाले रोग

- मांसपेशियों में कमजोरी हो जाती है।
- विकास दर कमजोर हो जाती है।
- आहार में घास की कमी तथा दानों के अधिक उपयोग से पोटेशियम की कमी हो जाती है।

रोग से बचाव के उपाय

- आहार में स्थानीय घास को मिलाना।
- हरे चारे की मात्रा को बढ़ाना।

सोडियम तथा क्लोरीन

कार्य

- शरीर द्रव्य की पी.एच. के रख–रखाव में।
- कोशिका झिल्ली के पारगम्यता में।
- शरीर द्रव्य के आयतन विनियमन में।
- परासरणी दाब के रख–रखाव में।
- अम्ल–क्षार संतुलन के रख–रखाव में।

सोडियम तथा क्लोरीन की कमी से होने वाले रोग

- पशुओं की वृद्धि दर रूक जाती है।
- पची हुई प्रोटीन व ऊर्जा के उपयोग को कम कर देता है।
- कॉर्नियां किरेटिनाइज हो जाता है।
- यौन परिपक्वता में देरी होना, पशु का मदकाल बिगड़ जाता है।
- हृदय उत्पादन दर कम हो जाती है।
- दुग्ध उत्पादन घट जाता है।
- पशुओं की त्वचा सूखी व तेजहीन हो जाती है।

रोग से बचाव के उपाय

- दुधारू पशुओं को 50 ग्राम शुष्क पशुओं को 30 ग्राम एवं छोटे पशुओं को 10–20 ग्राम नमक प्रतिदिन दें।

गंधक

कार्य

- गंधक शरीर की सभी कोशिकाओं में पाया जाता है परंतु मुख्य रूप से अमीनो अम्ल सिस्टीन, सिस्टाईन, मिथियोनिन में, इंसुलिन हार्मोन में, बायोटिन व थाइमिन विटामिन में पाया जाता है।
- इसके अतिरक्ति गंधक हिपेरिन, ग्लुटाथायोन, सह–एंजाइम ए, लाइपोइक अम्ल में भी पाया जाता है।
- ऊन व किरेटिन में भी गंधक पाया जाता है।
- जब पशु को अकार्बनिक नाइट्रोजन जैसे यूरिया खाने को दिया जा रहा हो, रूमन में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणु अकार्बनिक गंधक का प्रयोग कर गंधकयुक्त अमीनो अम्ल का निर्माण करते हैं।

रोग से बचाव के उपाय

- प्रोटीनयुक्त आहार देना।
- तेल खली पर्याप्त मात्रा में खिलाएं।

मैग्निशियम

कार्य

- दांत व हड्डी अनिवार्य घटक है।
- मैग्निशियम आयन फास्फेट्स एंजाइम को सक्रिय करता है एवं फॉस्फोरिकरण क्रिया में सहायता करता है।
- तंत्रिका पेशी संबंधी प्रणाली का चिड़चिड़ापन के नियंत्रण में।

मैग्निशियम की कमी से होने वाले रोग

- मैग्निशियम की कमी तभी होती है जब पशु को ऐसे चरागाह पर चरने के लिए भेजा जाता है या ऐसे खेत का चारा खिलाया जाता है जिसकी मिट्टी में मैग्निशियम की कमी होती है एवं ऐसा चारा जिसमें पोटेशियम की मात्रा अधिक होती है जो मैग्निशियम से प्रतिस्पर्धा कर ग्रास टिटेनी नामक रोग पैदा करता है।

रोग से बचाव के उपाय

- फलीदार व हरा चारा पर्याप्त मात्रा में देना।

लोहा एवं तांबा

कार्य

- पशुओं में लोहे की कमी बहुत बडी समस्या नहीं उत्पन्न करता है लेकिन इसकी मात्रा भोजन में कम होने पर पशु में रक्त अल्पता एवं लैंगिक शक्तिहीनता उत्पन्न होती है।
- ऐसे स्थानों में जहां की मिट्टी में तांबे की कमी है या मोलीबडेनिम की अधिकता होती है पशुओं में कॉपर की कमी पायी जाती है।

लोहा एवं तांबा की कमी से होने वाले रोग

- रक्तअल्पता (एनीमिया) हो जाती है।
- त्वचा पीली पड़ जाती है।
- वृद्धि दर में कमी हो जाती है।
- शरीर भार में कमी एवं शरीर पर सूजन आ जाती है।

- दस्त लग जाते हैं।
- बच्चेदानी का कार्य दब जाता है।
- ओवरी अक्रियाशील हो जाती है।
- यूँटरस के तन्तुओं में कमजोरी जैसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कॉपर सल्फेट के रूप में देकर प्रजनन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

रोग से बचाव के उपाय

- दलहनी चारा पर्याप्त मात्रा में खिलाएं।
- आहार के साथ खनिज लवण मिश्रण अवश्य दें।

मैंगनीज

मैंगनीज की कमी से होने वाले रोग

- पशु की बढ़वार कम हो जाती है।
- हड्डियों में असामान्यता आ जाती है।
- प्रजनन क्षमता कम हो जाती है।
- असामान्य बच्चे का जन्म होता है।

रोग से बचाव के उपाय

- पशु आहार में अनाज, चावल भूसी और अल्फाल्फा आहार खिलाएं।

जिंक/जस्ता

कार्य

- जस्ता कई एन्जाईमिक क्रियाओं में भाग लेता है।
- इसकी आवश्यकता भोजन में सूखा पदार्थ के आधार पर होनी चाहिए, जो अधिकांशत: पशु को दिये जाने वाले चारे में नहीं होती है।
- जस्ता विटामिन 'ए' के साथ बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य पशु की प्रजनन क्षमता बनाए रखने में करता है।

रोग से बचाव के उपाय

- पशुओं को फली, पेड़ के पत्ते तथा स्थानीय घास पर्याप्त मात्रा में खिलाएं।

कोबाल्ट

कार्य

- यह 'बी' ग्रुप विटामिन्स का एक आवश्यक भाग होता है।
- तांबे के साथ यह प्रजनन के लिए आवश्यक तत्व है।

कोबाल्ट की कमी से होने वाले रोग

- भूख कम लगना।
- शरीर भार में कमी।
- रक्त अल्पता की बीमारी।
- लैंगिक क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

रोग से बचाव के उपाय

- पशुओं को फली तथा हरा चारा पर्याप्त मात्रा में खिलाएं।

आयोडीन

कार्य

- इसकी बहुत थोड़ी मात्रा थायराईड ग्रन्थि से थाइरोक्सीन एवं डाईआयडोटाइरोसीन के निर्माण के लिए आवश्यक होती है जो कि चयापचय क्रियाओं को नियमित करने के लिए आधार होते हैं।

आयोडीन की कमी से होने वाले रोग

- गर्दन में उपस्थित थाइराइड ग्रंथि का बढ़ना जिससे गर्दन सूजी हुई दिखती है।
- गर्भवती पशु में कमी से मृत या बाल रहित बछड़े पैदा होना बछड़ों की शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि में रूकावट पशु का सुस्त दिखना एवं पाचन संबंधी व्याधियां
- ग्लाटिस नामक बीमारी हो जाती है।
- कमजोर बच्चे पैदा होते हैं।

रोग से बचाव के उपाय

- पशुओं को प्रतिदिन आयोडीन युक्त नमक ही खिलाएं। दुधारू पशुओं को 50 ग्राम शुष्क पशुओं को 30 ग्राम एवं छोटे पशुओं को 10-20 ग्राम आयोडीन युक्त नमक प्रतिदिन दें।

खनिज तत्वों की कमी की पहचान

पशु आहार में विभिन्न खनिज तत्व पाये जाते हैं, लेकिन आहार में इनकी मात्रा या पशु को उपलब्धता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिये किसी स्थान विशेष की भूमि में यदि किसी खनिज तत्व की कमी या अधिकता है तो वहां उगने वाले चारे में से भी उस तत्व की कमी या अधिकता होगी एवं ऐसे चारे उपयोग करने वाले पशु में भी उस तत्व की कमी या अधिकता के लक्षण दिखेंगें जैसे फॉस्फोरस, लोहा, तांबा, कोबाल्ट एवं आयोडीन की कमी वाले क्षेत्र में पशुओं में परिक्ता देरी से आती है। इसी तरह सैलेनियम तत्व की अधिकता वाले क्षेत्र में पैदा होने वाले धान की पुआल को आहार में प्रयोग द्वारा पशु में 'डेगनाला' नामक घातक बीमारी हो जाती है।

ऐसे कृषक जो अपने खेतों में चारा पैदा करते हैं, उन्हें प्रतिवर्ष मिट्टी का परीक्षण मृदा प्रयोगशाला या कृषि प्रयोगशाला में कराते रहना चाहिए ताकि मिट्टी में खनिज विशेष की कमी ज्ञात हो जाने पर उसके स्त्रोत को मिलाकर पशु को होने वाले कुप्रभाव से बचाया जा सके। वर्तमान समय में अधिक उत्पादन वाली फसलें उत्पन्न करने से मृदा में खनिज की कमी होना सामान्य बात है। अत: मृदा परीक्षण का महत्व और भी बढ़ जाता है।

खनिज तत्वों की अधिकता से पशुओं में होने वाले रोग

मुख्य रूप से मालिबडेनम, सैलेनियम व क्लोरीन की अधिक मात्रा पशुओं के लिये घातक है। मोलिबडेनम की अधिकता से पशुओं में पीट स्कॉर नामक रोग हो जाता है, इस रोग से पशु को दस्त लग जाते हैं, वजन कम हो जाता है, लंगड़ापन आ जाता है एवं हड्डियों में छेद हो जाते हैं। सैलिनियम की अधिक मात्रा से पशुओं में 'डेगनाला' नामक घातक बीमारी हो जाती है क्लोरीन की अधिकता से पशुओं में क्लोरोसिस नामक बीमारी हो जाती है।

जनजातीय क्षेत्र में बागवानी फसल उत्पादन की नवोन्वेषित व्यवस्थाएँ

दिलीप कुमार समादिया

देश में क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान सबसे बड़ा राज्य है तथा मरूस्थलीय एवं गर्म शुष्क जलवायु होने के उपरान्त भी यहाँ कृषि–बागवानी व पशुधन विकास की व्यापक सम्भावनाएँ हैं। क्षेत्रीय जलवायु व भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर बागवानी के लिए इस राज्य को तीन खण्डों यथा मरूस्थलीय/शुष्क, अर्द्धशुष्क एवं आर्द्रता युक्त उपोष्ण क्षेत्र में विभक्त किया जा सकता है। राज्य के उत्तर–पश्चिमी भू–भाग में वातावरणीय रूकावटें होने से बागवानी फसलों के चयन की सीमित संभावनाएँ हैं, जबकि इसके दक्षिण–पूर्व जनजातीय क्षेत्र की जलवायु बागवानी के लिए अनुकूल होने से विविध फसल उत्पादन की अधिक सम्भावनाएँ आँकी गई है। राज्य का दक्षिणी भू–भाग यथा बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़, उदयपुर, चितौड़गढ़ एवं सिरोही जिला अधिकतम जनजातीय बाहुल्य तथा इन जिलों के आस–पास एवं पूर्वी राजस्थान के कुछ उपखण्डों में आदिवासी बाहुल्यता होने से इन्हें भी जनजातीय क्षेत्र की श्रेणी में रखा गया है। जनजातीय क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियाँ, वर्षा एवं जल संसाधन में अनुकूलता से लगभग 100 प्रकार की बागवानी फसलों का व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन किया जा सकता है।

जलवायु विश्लेषण

सामान्यत: इन जनजातीय क्षेत्रों में मानसून की 500–750 मिलीमीटर वर्षा होती है, साथ ही सर्दियों में एक–दो दिन मावठ की वर्षा भी होती है। प्राय: यहाँ जून से सितम्बर महीनों में वर्षा अच्छी एवं नियमित अंतराल पर होती है जिससे खरीफ ऋतु में फसलों का उत्पादन वर्षा आधारित किया जाता है। प्रदेश के इस भू–भाग में ग्रीष्म एवं सर्दी ऋतु का मौसम कृषि–बागवानी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है क्योंकि यहाँ गर्मियों में दिन का अधिकतम तापमान 35–42° व सर्दियों में रात का न्यूनतम तापमान 4–8° सेल्सियस के मध्य रहता है जो फसलों के लिए अनुकूल है, जबकि राज्य के उत्तर–पश्चिमी भू–भाग में वातावरणीय कारकों का प्रकोप अधिक व फसलों के लिए प्रतिकूल रहता है।

कृषि विश्लेषण

भौगोलिक एवं कृषि की दृष्टि में इस क्षेत्र का अधिकांश भू–भाग पहाड़ियों व डूँगरियों के साथ कुछ समतल खेतों से मिलकर छोटे–छोटे जल–ग्रहण क्षेत्र हैं। यहाँ नदी, नालों व तालाबों के साथ छोटे बाँधों की अधिकता होने से भूमिगत जलस्तर एवं सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता अच्छी रहती है। पहाड़ियों व डूँगरियों वाली भूमि होने से समतल एवं कृषि–योग्य खेत कम हैं तथा किसानों के पास खेती–योग्य जोत छोटी है। परन्तु जलवायु में अनुकूलता, वर्षा का वितरण एवं सिंचाई जल की

उपलब्धता तथा विवि
में बागवानी विकास क

सामाजिक विश्लेषण

आदिवासी ब
संबंधित कार्यो से जुड़
क्षेत्रों की तुलना में कम
अधिकांश परिवार गरी
राज्यों में पलायन कर
लोगों का आर्थिक पक्ष
स्तर पर सुदृढ़ एवं स
कृषि में स्थिरता व उ
आधारित उद्यमिता क
नवोन्वेषित योजनाओं
रोजगारमुखी, टिकाऊ

बागवानी आधारित प्र

राज्य के ज
विकसित करने के लि
पर अनुसंधान एवं वि
जिसका प्रमुख कारण
अभाव रहा है। यहाँ प
अल्पप्रचलित एवं स्थ
अपनाया जाता है। इ
परम्परागत तकनीकी
फल, सब्जी व नगदी
बागवानी की जा रही
रहे हैं, जिसका प्रमुख
बीजों/पौधों का अभा

राजस्थान म

उपलब्धता तथा विविध फसलों की सहजता से उत्पादन के कारण यहाँ की कृषि–योग्य एवं बंजर भूमि में बागवानी विकास कर किसानों के आर्थिक पक्ष को मजबूत किया जा सकता है।

सामाजिक विश्लेषण

आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में लोगों का जीवन मुख्यत: कृषि, पशुपालन एवं वानिकी तथा इनसे संबंधित कार्यो से जुड़ा है। यहाँ के लोगों की आर्थिक, सामाजिक एवं शिक्षा का परिवेश प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की तुलना में कमजोर है। परम्परागत खेती व व्यवसाय से आमदनी कम एवं निश्चित नहीं होने से अधिकांश परिवार गरीबी स्तर का जीवन–यापन कर रहे हैं तथा ग्रामीण लोग रोजगार के लिए अन्य राज्यों में पलायन करते हैं जिससे इनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जनजातीय क्षेत्र के लोगों का आर्थिक पक्ष मजबूत करने एवं रोजगार के स्थायी संसाधन विकसित करने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर सुदृढ़ एवं समेकित योजनाओं की आवश्यकता है जिससे भौगोलिक एवं जलवायु के अनुरूप कृषि में स्थिरता व उत्पादकता में बढ़ोतरी हो सके, इसके लिए यहाँ बागवानी, वानिकी एवं पशुपालन आधारित उद्यमिता को विकसित करने की आवश्यकता है। यहाँ क्षेत्रीय स्तर पर बागवानी विकास की नवोन्वेषित योजनाओं की आवश्यकता है जिससे वर्तमान समय के अनुरूप संसाधनों के उपयोग से रोजगारमुखी, टिकाऊ एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

बागवानी आधारित प्रक्षेत्र विकास

राज्य के जनजातीय क्षेत्र की कृषि–जलवायु बागवानी आधारित फसल उत्पादन व्यवस्थाएँ विकसित करने के लिए सर्वोत्तम है। देश के कई प्रांतों में बागवानी फसल उत्पादन के लिए वृहद स्तर पर अनुसंधान एवं विकास कार्य हुए हैं परन्तु इस क्षेत्र के लोगों को इसका लाभ नहीं मिल पाया, जिसका प्रमुख कारण क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरुप बागवानी विकास की समेकित योजनाओं का अभाव रहा है। यहाँ परम्परागत एवं मिश्रित खेती से बागवानी उत्पादन किया जाता है तथा कुछ प्रमुख, अल्पप्रचलित एवं स्थानीय फसलों जिनके स्वत: पनपे या बीज द्वारा तैयार पेड़–पौधों को खेती में अपनाया जाता है। इसी तरह अनाज व दलहनी फसलों के साथ–साथ सब्जियों व औषधीय पौधों की परम्परागत तकनीकी अपनाकर खेती करते हैं। काश्तकारी जागरूकता, सिंचाई व्यवस्था, बाजार में फल, सब्जी व नगदी फसलों की माँग एवं उचित भाव मिलने से यहाँ भी परम्परागत व गैर–परम्परागत बागवानी की जा रही है। परंतु सीमित जानकारियाँ एवं तकनीकी से किसान इनसे पूरा लाभ नहीं ले पा रहे हैं, जिसका प्रमुख कारण क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप फसलों का चुनाव, उन्नत किस्मों एवं उनके बीजों/पौधों का अभाव तथा खेती में वैज्ञानिकता का समावेश नहीं करना प्रमुख है।

राजस्थान में बागवानी विकास के लिए विगत 25 वर्षो से क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर

किए गये अनुसंधान अध्ययनों में फसलों की व्यावसायिक उत्पादन क्षमता की संभावनाओं एवं रूकावटों तथा संसाधनों का समुचित उपयोग जैसे महत्वपूर्ण घटकों का मेरे द्वारा विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गए हैं। अध्ययनों के आधार पर जलवायु के अनुरूप खेती के लिए बागवानी आधारित योजनागत प्रारूप तैयार किए हैं जिनमें फल व वानिकी वृक्षों के साथ फसल उत्पादन की प्रणालियों को संसाधनों के अनुरूप समावेश किया है। मेरे द्वारा किये गये अनुसंधान कार्यो के आधार पर एक सुनियोजित योजना का सृजन किया गया है जिसको बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन (Horticulture based crop production site management approach, HBCPSMA) नाम दिया है।

जनजाति क्षेत्र में बागवानी को दो आयामों से विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें मुख्य फल जैसे आम, अनार, संतरा, मौसम्बी, नींबू, अमरूद, आँवला, बेर, सीताफल, पपीता, केला, सब्जियाँ, मसाला फसलों आदि की व्यवस्थित एकल खेती तथा दूसरी पद्धति जिसमें विविध प्रकार के स्थानीय पेड़-पौधों, संसाधनों एवं मूलभूत आवश्यकताओं के अनुरूप फसलों का समावेश कर आम आधारित (mango based) प्रक्षेत्र विकास एवं उत्पादन व्यवस्थाएँ करनी होती हैं। यहाँ किसान इन दो आयामों से बागवानी आधारित उद्यमिता में विविध प्रणालियों का समावेश कर योजनाबद्ध उत्पादन द्वारा कम खेती योग्य जमीन, सीमित वर्षा व सिंचाई जल एवं विषम परिस्थितियों में भी सुनिश्चित, अधिक व निरन्तर आय अर्जित कर सकते हैं। इन व्यवस्थाओं को विकसित करने में किसान को प्रारम्भ के 2-3 वर्षो तक कड़ी मेहनत करनी होती है जिसका प्रतिफल खेती में स्थिरता तथा स्वरोजगार से आय में निरन्तर वृद्धि का होना है। बागवानी आधारित प्रक्षेत्र विकास एवं फसल उत्पादन प्रबंधन मुख्यत: वर्णित तकनीकों में केन्द्रित रहेगा :-

1. जिन किसानों के पास 2-10 बीघा समतल या उबड़-खाबड़ डूँगरियों वाला एकल जोत है, यदि वह कृषि-योग्य या बंजर भूमि होने पर भी बागवानी आधारित प्रक्षेत्र विकसित कर सकते हैं। सर्वप्रथम इस योजना में चयनित भू-भाग के चारों ओर बाड़ या तार बंदी अथवा कच्चे पत्थरों से दीवार तैयार करना आवश्यक है क्योंकि यह प्रक्षेत्र विकास का पहला सैद्धांतिक आधार है। प्रक्षेत्र-बंदी से ही खेत में फसल उत्पादन के लिए उचित कृषि-वातावरण तैयार करने वाले पेड़-पौधों को व्यवस्थित प्रारूप में लगाया जाता है। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने से 2-3 महीने पहले प्रक्षेत्र-बंदी के अंदर व बाहर की चारों दिशाओं में एक मीटर चौड़ी व इतनी ही गहरी खाई बनायी जाती है तथा मानसून प्रारम्भ होते ही अन्दर वाली खाई में स्थानीय प्रजातियों के बीजू पेड़-पौधों जैसे आम, जामुन, लसोड़ा, इमली, बोरड़ी, तेंदू, महुआ, खिरनी, कैंथ, कटहल, खजूर, ताड़, सागवान, बाँस, रतनजोत, सन्देड़ा इत्यादि का

प्राथमिकता से लगाना चाहिए। यह पेड़–पौधे समय के साथ बड़े होने पर न केवल कृषि–वातावरण साथ ही संस्कृति के अनुरूप भोजन एवं आमदनी में भी में सहायक सिद्ध होंगे।

2. प्रक्षेत्र विकास के पश्चात् भू–भाग की जमीन को स्थिति एवं श्रेणी के अनुरुप छोटे–छोटे खेत की तरह तैयार किया जाता है। समतल व उपजाऊ भू–भाग को अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जी, मसाला जैसी ऋतु फसलों अथवा एकल फल वृक्षों के बगीचों (आम, अनार, नींबू, संतरा, मौसम्बी, अमरूद, आँवला, बेर, सीताफल, पपीता, केला) के लिए चयनित करें तथा संसाधनों के अनुरूप बागवानी आधारित उत्पादन प्रणालियाँ अपनानी चाहिए। इसी तरह उबड़–खाबड़, असमतल, कंकरीली–पथरीली डूँगरियों, नालों व बंजर भू–भाग को परम्परागत एवं अल्पप्रचलित पेड़–पौधों की बागवानी के लिए विकसित किया जाना चाहिए तथा इसके अंतर्गत आम, जामुन, लसोड़ा, इमली, आंवला, बेल, बेर, बोरड़ी, झड़बेर, तेंदू, महुआ, खिरनी, कैंथ, कटहल, खजूर, ताड़, सीताफल, करौंदा, सहजन, सागवान, बाँस, रतनजोत, सन्देड़ा इत्यादि के बीजू पौधों की एकल अथवा मिश्रित उत्पादन व्यवस्थाएँ अपनाई जाती हैं। अत्यधिक उबड़–खाबड़, डूँगरियों व पहाड़ी भूमि का उचित सर्वेक्षण कर इसको भी फल वृक्षों की बागवानी एवं वानिकी के उपयोग में लाया जा सकता है तथा इसके लिए उपयुक्त एवं चयनित क्षेत्र पर 2–4 वर्गमीटर भू–भाग को 1–3 मीटर गहरा खुदाई कर उसमें खेती–योग्य मिट्टी भर कर मजबूत मेड़ बंदी कर दी जाती है एवं इस तरह तैयार एकल स्थानों पर स्थानीय प्रजातियों के बीजू पेड़–पौधों जैसे आम, इमली, महुआ, तेंदू, सागवान इत्यादि को लगाकर इनकी सुरक्षा एवं प्रबंधन कर विकसित किये जाते हैं।

3. समतल, उपजाऊ व संसाधनों युक्त भूमि को व्यवस्थित बागवानी के उपयोग में लेने के लिए फलवृक्षों को कतारों एवं प्रारूप के अनुरूप लगाया जाता है जिससे प्रक्षेत्र एकल बगीचों का स्वरूप ले सकें। फलवृक्ष आधारित बागवानी दो पद्धतियों से विकसित की जाती है जिसमें पहली सघन व एकल फसल उत्पादन तथा दूसरी पद्धति में फलवृक्षों को अधिकतम दूरी की पट्टिकाओं, कतारों व जोड़ों में विकसित किया जाता है एवं पट्टिकाओं के मध्य की भूमि को खेत स्वरूप तैयार कर विविध फसल उत्पादन के उपयोग में लिया जाता है।

4. फलवृक्षों के एकल बगीचे 4 x 4 या 8 x 8 मीटर की दूरी की विधियों में विकसित किये जाने चाहिए तथा प्रारम्भ के 4–6 वर्षो तक इन बगीचों में वर्षा व शीत ऋतु में अन्तराशस्य (inter-cropping) फसल उत्पादन करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। इसी तरह बागवानी आधारित उत्पादन की दूसरी व्यवस्थाओं के लिए प्रक्षेत्र में एक निश्चित परन्तु अधिकतम दूरी (24 या 48 मीटर) पर एकल अथवा जोड़े (4–8 मीटर) में आम, इमली, जामुन, अमरूद,

आँवला, बेल, बेर आदि फलवृक्षों की पंक्तिनुमा पट्टिकाएं विकसित की जाती हैं। खेत में पट्टिकाओं (24 या 48 मीटर) की भूमि को लगातार उत्पादन के उपयोग में लिया जाता है एवं प्रणालियों में विविध प्रकार की फसलों का चयन, वर्षा की मात्रा, सिंचाई जल की उपलब्धता एवं बाजार मांग के अनुरूप कर किसान संसाधनों का उपयोग अधिकतम आय के लिए कर सकते हैं।

5. खेत में पूर्व से पश्चिम की ओर रेखांकन कर एकल अथवा जोड़े में पंक्तिनुमा हल्की गहरी नालियाँ बना कर इनमें निश्चित की गई दूरी पर वृक्षारोपण के लिए 90 x 90 x 90 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढे तैयार करें तथा बरसात के मौसम में इनमें फलवृक्षों के कलमी अथवा बीजू पौधे लगावें, एवं विकसित बीजू पौधों को एक वर्ष पश्चात् स्वस्थानिक कलमी बनावें। कलिकायन किये पौधों की प्रारम्भ के 3-5 वर्षो तक कटाई-छँगाई कर उचित आ.ति देवें एवं इस तरह विकसित बगीचे 4-5 वर्षो पश्चात् स्थाई आय का साधन बन जाते हैं। साथ ही खेत में कृषि-योग्य वातावरण तैयार होगा एवं पट्टिकाओं के मध्य की फसलों के लिए भी लाभदायक रहेगा।

6. मानसून की बरसात आने की सूचना के साथ ही जून में फलवृक्षों की पट्टिकाओं के मध्य की भूमि को अच्छी तरह से खेत के रूप में तैयार कर लेवें। जून के अंतिम सप्ताह में इन पट्टिकाओं की एक बार गहरी जुताई कर उसमें गोबर की खाद मिलाकर पुन: जुताई के पश्चात् पाटा लगाकर खेत को बुवाई के लिए तैयार रखें। जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के अंत तक जब भी अच्छी वर्षा हो उसी समय वर्षा आधारित अनाज, दलहनी, तिलहनी व सब्जी फसलों की उन्नत तकनीकियाँ अपनाकर बुवाई करें। बुवाई हेतु कम अवधि में पकने वाली उन्नत किस्मों के बीजों का चयन करें। सिंचाई जल की व्यवस्था होने की स्थिति में उचित सिंचाई तरीकों (बूँद-बूँद व फव्वारा पद्धति) को अपनाकर वर्षा व शीतकालीन फसलों की खेती करना उपयुक्त रहेगा। फलवृक्षों की चौड़ी पट्टिकाओं वाली भूमि को उत्पादन प्रणालियों के लिए करोंदा, सीताफल, पपीता, सहजन, व औषधीय तथा फूलों वाले पौधों की खेती करना भी लाभदायक रहेगा।

7. प्रक्षेत्र प्रबंधन के अन्तर्गत बुवाई से पूर्व व पश्चात् खेत एवं प्रक्षेत्र की तैयारी तथा वर्षा जल संग्रहण एवं नमी संरक्षण क्रियाओं को अपनावें। वर्षा आधारित फसल उत्पादन के लिए मानसून सूचना का उपयोग एवं सुनिश्चित फसल उत्पादन के लिए जीवनदायी सिंचाई की समय-सारणी तैयार करें। फसलों के साथ-साथ उन्नत किस्मों के बीज का चयन, उपचार तथा समय पर विधिवत बुवाई करना, पौध संख्या निर्धारण, निराई-गुड़ाई, अन्तर-शस्य

क्रियाएँ तथा पलवार बिछाना आदि फसल प्रबन्धन कार्य प्राथमिकता से करें। फसल में अच्छी वृद्धि के लिए समुचित खाद व उर्वरक तथा नियामक तत्वों का उपयोग करें एवं फसल सुरक्षा हेतु कीड़े व बीमारियों का समेकित नियंत्रण करें। फलन के समय खेत की गहन रखवाली करें जिससे फसल उत्पाद में प्रथम श्रेणी के फल–फलियों की तुड़ाई व विपणन का ध्यान रखा जा सके। जंगली जानवरों व पशु–पक्षियों से फसल को नुकसान से बचाना भी एक प्रमुख प्रबंधन कार्य है।

तालिका–1: जनजातीय क्षेत्र में बागवानी के लिए उपयुक्त फलवृक्ष एवं उनकी प्रजातियाँ।

फलवृक्ष	उन्नत किस्में
आम	दशहरी, केसर, चौसा, लंगड़ा, आम्रपाली, मलिका स्थानीय प्रजातियाँ कच्ची केरी, अचार व आमचूर के लिए
अमरूद	लखनऊ–49, इलाहाबादी सफेदा, ललित
आँवला	एन.ए.–7, गोमा ऐश्वर्य
बेल	गोमा यशी, एन.बी.–5
इमली	गोमा प्रतीक, प्रतिष्ठान
जामुन	गोमा प्रियंका
बेर	गोला, गोमा कीर्ति, उमरान
अनार	जालौर सीडलेस, भगवा, अरक्ता, मृदुला
नींबू	बारामासी, कागजी, साई शरबती
सीताफल	स्थानीय प्रजातियाँ
पपीता	स्थानीय व हाईब्रिड प्रजातियाँ

तालिका–2: जनजातीय क्षेत्र में बागवानी के लिए उपयुक्त सब्जी फसलें।

वर्ग	फसल
कुष्माण्ड कुल	लौकी, नसदार तुरई, चिकनी तुरई, करेला, ककोड़ा, कुन्दरु, कददू, खीरा, चिकन ककड़ी, तर ककड़ी, आरा ककड़ी, फूट ककड़ी, काचरी, खरबूजा, टिण्डा, तरबूज
फलदार सब्जियाँ	टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिण्डी
गोभी वर्गीय सब्जियाँ	पत्ता गोभी, फूल गोभी, गाँठ गोभी
फलीदार सब्जियाँ	ग्वारफली, सेमफली, कुम्बाफली, चवलाँफली, कौचफली
पत्ती वाली सब्जियाँ	मेथी, पालक, धनिया, सुवा, चौलाई, बथुआ, पुदीना
जड़ वाली सब्जियाँ	गाजर, मूली, रतालू, जमीकंद, अरबी
अल्पप्रचलित सब्जियाँ	सहजन, अरीटा, अदरक, हल्दी, मिठानीम

पशुओं को एजोला चारा खिलाने के लाभ

एजोला प्रोटीन, आवश्यक अमीनो एसिड, विटामिन (विटामिन ए, विटामिन बी-12 तथा बीटा-कैरोटीन), विकासवर्धक सहायक तत्वों एवं लवण (कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटाशियम, फासफोरस, कॉपर, मैगनीशियम) से भरपूर होती है। शुष्क वजन के आधार पर, उसमें 25-35 प्रतिशत प्रोटीन, 10-15 प्रतिशत खनिज एवं 7-10 प्रतिशत अमीनो एसिड, बायो-एक्टिव पदार्थ तथा बायो-पॉलीमर होते हैं। इसके उच्च प्रोटीन एवं निम्न लिग्निन तत्वों के कारण मवेशी इसे आसानी से पचा लेते हैं। पशुओं के पेशाब में खून आने की समस्या फॉस्फोरस की कमी से होती है। पशुओं को अजोला खिलाने से यह कमी दूर हो जाती है। एजोला से पशुओं में कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहे की आवश्यकता की पूर्ति होती है जिससे पशुओं का शारीरिक विकास अच्छा होता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की मात्रा अत्यंत कम होती है। अत: इसकी संरचना इसे अत्यंत पौष्टिक एवं असरकारक आदर्श पशु आहार बनाती है। यह गाय, भैंस, भेड़,बकरियों, मुर्गियों आदि के लिए एक आदर्श चारा सिद्ध हो रहा है। दुधारू पशुओं पर किए गए प्रयोगों से साबित होता है कि जब पशुओं को उनके दैनिक आहार के साथ 1.5 से 2 किलोग्राम एजोला प्रतिदिन दिया जाता है तो दुग्ध उत्पादन में 15-20 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है। इसके साथ इसे खाने वाली गाय-भैंसों की दूध की गुणवत्ता भी पहले से बेहतर हो जाती है। एजोला दाने के साथ मिश्रित किया जा सकता है या सीधे ही जानवरों को खिलाया जा सकता है।

एजोला का उत्पादन

पहले क्षेत्र की जमीन की खरपतवार को निकाल कर समतल किया जाता है। इसके बाद 2 मीटर लंबा, 1 मीटर चौड़ा तथा 30 सेमी. गहरा गड्ढा खोदा जाता है। पानी के रिसाव को रोकने के लिए इस गड्ढे को प्लास्टिक शीट से ढंक देते हैं। प्लास्टिक या सिल्पोलिन शीट को गड्ढे के भीतरी सतह के ऊपरी हिस्से को ईट से दबाते हैं ताकि किनारे ढंक जाएं। प्लास्टिक या सिल्पोलिन के गड्ढे पर 10-12 किलो छनी मिट्टी फैला दी जाती है। 10 लीटर पानी में मिश्रित 2 किलो गोबर एवं 30 ग्राम सुपर फॉस्फेट से बना घोल, शीट पर डाला जाता है। जलस्तर को लगभग 10 सेमी तक करने के लिए पानी मिलाया जाता है। एजोला क्यारी में मिट्टी तथा पानी के हल्के से हिलाने के बाद लगभग 0.5 किलो शुद्ध मातृ एजोला कल्चर बीज सामाग्री पानी पर एक समान फैला दी जाती है। संचारण के बाद एजोला के पौधों को सीधा करने के लिए एजोला पर ताजा पानी छिड़का जाना चाहिए। एक सप्ताह के अन्दर, एजोला पूरी क्यारी में फैल जाती है एवं एक मोटी चादर जैसा बन जाती है। एजोला की वृद्धि तथा 50 ग्राम दैनिक पैदावार के लिए, 5 दिनों में एक बार 20 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 1 किलो गोबर मिलाया जाना चाहिए। एजोला में खनिज की मात्रा बढ़ाने के लिए एक-एक

अंतराल पर मैग्नीशियम, आयरन, कॉपर, सल्फर आदि से युक्त एक सूक्ष्मपोषक भी मिलाया जा सकता है। नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ने तथा सूक्ष्मपोषक की कमी को रोकने के लिए, 30 दिनों में एक बार लगभग 5 किलो क्यारी की मिट्टी को नई मिट्टी से बदलनी चाहिए। क्यारी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ने से रोकने के लिए, प्रति 10 दिनों में एक बार, 25 से 30 प्रतिशत पानी भी ताजे पानी से बदला जाना आवश्यक होता है। प्रति छह महीनों में क्यारी को साफ किया जाना चाहिए, पानी तथा मिट्टी को बदला जाना चाहिए एवं नए एजोला का संचारण किया जाना चाहिए। कीटों तथा बीमारियों से संक्रमित होने पर एजोला के शुद्ध कल्चर से एक नयी क्यारी तैयार तथा संचारण किया जाना चाहिए।

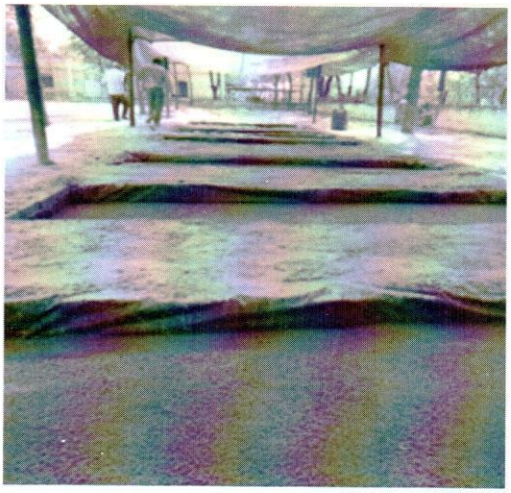

कटाई

तेजी से बढ़कर, 10-15 दिनों में गड्ढे को एजोला का बायोमास भर जाता है।उसके बाद से 500-600 ग्राम एजोला की फ़सल को प्रतिदिन निकाल कर इस्तेमाल किया जा सकता है। प्लास्टिक की छलनी या ट्रे जिसके निचले भाग में छिन्द्र हो, की सहायता से, 15 वें दिन के बाद से प्रतिदिन किया जा सकता है। एजोला की फ़सल से, गोबर की गन्ध हटाने के लिए इसे ताजे पानी से धोया जाना चाहिए।

वैकल्पिक आगत

ताजी बायोगैस का घोल भी इस्तेमाल किया जा सकता है। बाथरूम तथा पशुशाला का गन्दा पानी भी गड्ढा भरने में इस्तेमाल किया जा सकता है, उन क्षेत्रों में, जहां ताजे पानी की उपलब्धता की समस्या हो, वहां कपड़े धोने के बाद बचा हुआ पानी भी (दूसरी बार खंगालने के बाद) इस्तेमाल किया जा सकता है।

बढ़ोत्तरी के लिए पर्यावरणीय कारक

- तापमान 25–28° सेन्टी
- प्रकाश, सूर्य के तेजप्रकाश का 50 प्रतिशत
- सापेक्षिक आर्द्रता 65 से 80 प्रतिशत
- पानी (टैंक में स्थिर) 5 से 12 सेमी
- पी.एच मान 4 से 7.5

एजोला के खेती के दौरान नोट किए जाने वाले बिन्दु

1. इसे एक जाली में धोना उपयोगी होगा क्योंकि इससे छोटे–छोटे पौधे बाहर निकल पाएंगे जो वापस तालाब में डाले जा सकते हैं।
2. तापमान 25° सेन्टी. से नीचे बनाए रखने का ध्यान रखना चाहिए। प्रकाश की तीव्रता कम करने के लिए छांव करने की जाली का उपयोग किया जा सकती है।
3. एजोला बायोमास अत्यधिक मात्रा में एकत्र होने से बचाने के लिए उस प्रतिदिन हटाया जाना चाहिए।
4. एजोला तैयार करने की टंकी के पानी के पीएच मान का समय–समय पर परीक्षण करते रहना चाहिए। इसका पीएच मान 5.5–7.0 के मध्य होना उत्तम रहता है।
5. लगभग 15 दिनों के अन्तराल में, एक बार एजोला तैयार करने की टंकी या गड्ढे से 50 प्रतिशत पानी ताजे पानी से बदल देना चाहिए जिससे नाइट्रोजन की अधिकता से बचाया जा सके।

पशुपालन व्यवसाय : कल्याणकारी योजनाएँ

नेमीचंद बारासा, सुषमा विज, सुमन्त व्यास एवं विरेन्द्र नेत्रा

भारत विशाल एवं विविध भौगोलिक परिस्थितियों में फैला हुआ एक ऐसा देश है जहां की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है। यह आबादी मुख्यत: खेती व पशुपालन पर आधारित रहते हुए अपनी आजीविका चलाती है। सूचना व प्रौद्यागिकी के इस युग में भारत के ग्रामीण अंचलों में भी परिवर्तन की लहर उठने लगी है तथा किसान व पशुपालक तकनीकी ज्ञान का अपनी आजीविका में समायोजन कर अपनी समाजार्थिक स्थिति में बदलाव चाहते हैं। इस हेतु सरकारी स्तर पर भी विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं, प्रसार कार्यक्रमों, जन सहभागिता अभियान कार्यक्रमों आदि के माध्यम से सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं ताकि अधिकाधिक पशुपालक एवं किसान भाई पशुपालन व्यवसाय से जुड़े रहते हुए लाभान्वित हो सके।

हमारे देश में कृषि की प्रधानता होने तथा अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करने के कारण अधिकांशत: राज्य अपने किसानों एवं पशुपालकों हेतु कृषि एवं पशुपालन से जुड़ी विविध लाभकारी योजनाएं चलाते हैं। इसी क्रम में राजस्थान प्रदेश के किसान व पशुपालक की कृषि विशेषकर पशुधन पर आधारित आजीविका निर्भर होने के कारण राजय सरकार द्वारा वर्तमान में निम्नलिखित सरकारी योजनाएं चलाई जा रही है :-

1. भामाशाह पशु बीमा योजना

भामाशाह पशु बीमा योजना का उद्देश्य पशुपालकों के पशुओं का अनुदानित प्रीमियम दरों पर बीमा कर उन्हें आर्थिक सम्बल प्रदान करना है। भामाशाह कार्ड धारक पशुपालक इस योजना का लाभ लेने के पात्र है। लाभान्वित पशुओं में दूध दे रहे पशु यथा गाय, भैंस, भार ढ़ोने वाले पशु जैसे ऊँट, घोड़ा, गधा, सांड, पाडा तथा अन्य पशुओं में भेड़, बकरी, सूअर आदि (एक कैटल यूनिट 10 भेड़/बकरी) शामिल हैं। इस योजना की प्रीमियम (बीमा शुल्क) दर दुधारू पशु-गाय, भैंस की एक वर्ष के लिए 2.79 प्रतिशत तथा तीन वर्ष हेतु 7.4 प्रतिशत है। भेड़, बकरी के लिए एक वर्ष में 4 प्रतिशत, तीन वर्ष हेतु 10.5 प्रतिशत तथा भार ढोने वाले वाले पशुओं के लिए एक वर्ष में 3.5 प्रतिशत तथा तीन वर्ष पर 9 प्रतिशत रखा गया है। इसमें पशु की अधिकतम कीमत दुधारू गाय 40 हजार, दुधारू भैंस 50 हजार, 10 भेड़/बकरी/सूअर 50 हजार तथा भार ढोने वाले पशु की 50 हजार निर्धारित की गई है। इस योजना हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवंबी.पी.एल.पशुपालक को 70 प्रतिशत व सामान्य श्रेणी पशु पालक को 50 प्रतिशत (सर्विस टैक्स अतिरिक्त) के अनुदान का भी प्रावधान रखा गया है। इस बीमा योजना हेतु जरूरी दस्तावेज यथा- आवेदन पत्र, पशु स्वास्थ्य प्रमाण पत्र, पशु के

कान में टैग सहित पशु पालक का फोटो, भामाशाह कार्ड की प्रति, बी.पी.एल./एस.सी./एस.टी.कार्ड की फोटो प्रति, बैंक का नाम, खाता संख्या, आई.एफ.सी.कोड आदि, आधार कार्ड की प्रति (यदि हो) प्रीमियम राशि आवश्यक है। इस योजना में बीमा लाभ रोग अथवा दुर्घटना की स्थिति में बीमीत पशु की मृत्यु पर 100 प्रतिशत बीमा लाभ दिया जाता है।

2. प्रगतिशील महिला पशुपालक सम्मान समारोह योजना

राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत प्रगतिशील महिला पशु पालकों का चयन किया जाता है। इस योजना का उद्देश्य पशु पालकों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धात्मक भावना उत्पन्न करना, आधुनिक एवं नवीनतम तकनीक द्वारा पशुओं की देखभाल से उत्पादकता पर प्रभाव एवं समृद्ध एवं उन्नत नस्ल के पशु रखने के लिए प्रेरित करना,पशु पालकों का आर्थिक, सामाजिक विकास कर उन्हें पशुधन विकास की मूल धारा से जोड़ना तथा नस्ल सुधार हेतु कृत्रिम गर्भाधान/उन्नत नस्ल के साँड से प्राकृतिक परिसेवा द्वारा उत्पादित पशुओं की उत्पादन क्षमता का प्रदर्शन कर अन्य पशु पालकों को प्रोत्साहित करना है। इस योजना की पात्रता के लिए जरूरी है कि राजस्थान की मूल निवासी महिला पशु पालक जिसे विभाग द्वारा संचालित योजनाओं की जानकारी हो एवं नवीनतम तकनीकों का उपयोग कर अच्छे पशुओं का पालन करता हो। इन महिला पशु पालकों का जाता है। राज्य स्तर पर दो (5000/- प्रत्येक), प्रत्येक जिला स्तर पर दो (25000/- प्रत्येक), तथा प्रत्येक पंचायत समिति पर एक (10000/- प्रत्येक) महिलाओं का पुरस्कृत किया जाता है।

3. उष्ट्र विकास योजना

परिवर्तित परिदृश्य में ऊँट की दशा एवं दिशा को लेकर प्रदेश की सरकार खासा चिन्तित हैं। फलस्वरूप राज्य सरकार ने 'ऊँट' को 'राजकीय पशु' घोषित कर इसके संरक्षण एवं विकास का बीड़ा उठाया है। प्रदेश की सरकार, पशुधन विकास नीति के तहत पशुधन एवं इससे जुड़े लोगों की स्थिति में सुधार लाने हेतु दृढ़ संकल्पित है।

इस हेतु 02 अक्टूबर, 2016 से उष्ट्र विकास योजना प्रारम्भ की गई है तथा समस्त उष्ट्र पालक इस योजना का लाभ लेने के पात्र है। परंतु उष्ट्र पालक के पास भामाशाह कार्ड होना अनिवार्य है। राजस्थान सरकार द्वारा इस योजना को प्रारम्भ करने के पीछे उद्देश्य राजस्थान राज्य के भामाशाह कार्ड धारक समस्त उष्ट्र पालकों को ऊँटों के उचित रखरखाव, उचित प्रबंधन एवं प्रजनन हेतु प्रेरित करना तथा साथ ही 2 अक्टूबर 2016 को या इसके पश्चात् प्रसवित मादा ऊँटनी के नवजात शिशु के उचित पालन पोषण हेतु राज्य सरकार द्वारा आर्थिक सहायक (रु. 10000/-) प्रदान की जा रही है। ऊँटनी व बच्चें दोनों की टैगिंग कर संबंधित का बीमा कर पशु पालक को आर्थिक सुरक्षा

प्रदान की जाती है। योजनान्तर्गत चयनित ऊँट पालकों को ऊँट पालन संबंधी प्रशिक्षण भी दिया जाएगा। बच्चे की 0-1 माह की आयु पर रु. 3000/-, 9 माह की आयु पर रु. 3000/-, 18 माह की आयु पर रु. 4000/- यानि कुल 10,000/- की आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

4. प्रजनन सांडों का पंजीकरण एवं नकारा सांड/बछड़ा बधियाकरण योजना

इस योजना का उद्देश्य देशी गोवंश के संरक्षण, संवर्धन तथा नस्ल सुधार को प्रोत्साहित करना, प्रजनन योग्य सांडों का चिन्हीकरण कर उपलब्धता का आकलन, अंत:प्रजनन की रोकथाम, प्रजनन सांडों से फैलने वाले जनन रोगों की रोकथाम, नकारा सांडों से फैलने वाले जनन रोगों की रोकथाम, नकारा सांडों द्वारा उन्नत मादा गोवंश के साथ प्रजनन रोकना, अनचाहे बछड़ों का प्रजनन सांड बनने से रोकना है। इस योजना की कार्य अवधि तीन वर्ष है। एक वर्ष की समीक्षा के पश्चात् इसे आगामी दो वर्षो के लिए संचालित किया जाएगा। इसमें लाभान्वित पशुपालक की श्रेणी में पंजीकृत गौशाला, गौ-सदनों, गौ पुनर्वास केन्द्रों तथा ''बछड़ा पालन पशुपालक के द्वार'' योजना में सम्मिलित पशुपालक सम्मिलित हैं। पंजीकृत सांड का बीमा विभाग द्वारा करवाया जाएगा तथा सांड पंजीकरण हेतु प्रोत्साहन राशि रु. 240/- प्रति सांड देय होगी।

5. नकारा सांड/बछड़ों का बधियाकरण कार्यक्रम

इस योजना का उद्देश्य पंजीकृत गौशालाओं/गौसदनों/गौ पुनर्वास केन्द्र में संधारित अवर्गीकृत बछड़ों एवं नकारा सांडों का बधियाकरण किया जाकर गौ संवर्धन को प्रोत्साहित किया जाना है। योजना की पात्रता हेतु गौशाला/गौसदन/गौ पुनर्वास केन्द्र पंजीकृत होनी चाहिए। प्रोत्साहन राशि के रूप में रु. 1259/- प्रति बधियाकरण प्रोत्साहन राशि विभाग द्वारा संबंधित गौसंस्था को दी जाएगी।

6. नि:शुल्क आरोग्य दवा योजना

समस्त पशुपालकों हेतु नि:शुल्क आरोग्य दवा योजना 15 अगस्त 2012 से प्रारम्भ है। इस योजना का मुख्य ध्येय राजस्थान राज्य के समस्त पशुपालकों के बीमार पशुओं के उपचार हेतु एवं पशुधन को स्वस्थ व अधिकतम उत्पादक बनाने हेतु प्रत्येक पशु चिकित्सा संस्था में नि:शुल्क औषधि की उपलब्धता है। गाय, भैंस, ऊँट, घोड़ा, गधा आदि एक पशु एवं भेड़/बकरी/सूअर (10 पशु) एवं मुर्गी (100 पक्षी) को एक यूनिट/कैटल हैड मानते हुए 2/- पंजीकरण शुल्क प्रति कैटल हैड वसूला जाकर पशु चिकित्सा संस्था/शिविर में लाए गए बीमार पशुओं का योजनान्तर्गत उपलब्ध औषधियों से नि:शुल्क उपचार दिया जाता है।

पशु एवं पशु पालकों के कल्याणार्थ इन योजनाओं में पशु पालकों के चयन, उनकी पात्रता, पशुओं के बीमे हेतु निर्धारित लक्ष्य, योजना का प्रारूप, पशु के बीमा संबंधी जानकारी, योजना क्रियान्वयन की विधि तथा वित्तीय अनुदान एवं भुगतान विधि की विस्तृत जानकारी राजस्थान सरकार, पशु पालन विभाग, जयपुर के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। इस विभाग द्वारा प्रदेश के पशुधन से जुड़ी योजनाओं की जानकारी इंटरनेट के माध्यम से भी प्राप्त की जा सकती है। इन योजनाओं की सफलता व सार्थकता हेतु सरकारी प्रयासों के साथ-साथ जनसहभागिता अत्यंत जरूरी है ताकि प्रदेश के अधिकतर पशु पालक या किसान जो कि कम पढ़े-लिखे अथवा निरक्षर हैं, उन्हें इन पशु कल्याणकारी योजनाओं की विस्तृत व सही जानकारी प्राप्त हो सके। इस पुनीत कार्य में स्वयंसेवी संस्थाएं, पंचायती राज संस्थाएं, गैर सरकारी संगठन, जन प्रतिनिधि, साक्षर पशुपालक आदि द्वारा भी महत्ती सहयोग अपेक्षित है।

सहकारी समिति का उष्ट्र दूध व्यवसाय में महत्व

राजेश कुमार सावल एवं राकेश रंजन

भारत में ऊंट मुख्यत: राजस्थान, गुजरात व जम्मू एवं कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में पाए जाते हैं। उपयोगिता को देखते हुए उष्ट्र प्रजाति की संख्या व इनको पालने की रूचि रखने वालों की संख्या में निरंतर कमी आ रही है। विकल्प के रूप में इसके दूध में मानव के लिए औषधि के रूप में लिया जाना संभव है, जिस पर प्रयास लगातार जारी है। यह दूध मुख्यत: मधुमेह रोग, मंद बुद्धि बच्चों में, क्षय रोग इत्यादि में बहुत लाभकारी पाया गया है। जरूरत है इसे मानव हित के लिए व्यवसाय से जोड़ने की ताकि ऊँट पालक को फायदा भी हो सके। ऊँटों की घटती संख्या के कारण इन्हें पालने वाले को संगठित किया जाए ताकि इस व्यवसाय की शुरुआत हो सके। मरू क्षेत्र में ऊँट एवं ऊँट पालकों की आबादी का घनत्व बहुत कम होने के कारण उन्हें संगठित करना चुनौती भरा है परन्तु नामुमकिन नहीं, विशेषकर जब बात मानव कल्याण से जुड़ी हो।

उष्ट्र पालन के लिए संगठित होने के फायदे

1. प्राय: बोझा ढोने वाले पशु के रूप में इस्तेमाल में लिए जाने के कारण इसके स्वास्थ्य को कम महत्व दिया जाता है। सहकारी समिति द्वारा सिफारिश किये जाने पर सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं का दायित्व अधिक प्रबल हो जाता है, जिसका लाभ पशु पालक को मिल सकता है। ऊँटो के संरक्षण के लिए अच्छी नस्ल व गुणों वाले पशु समिति सदस्यों के लिए लिया जा सकता है या आपस में साझा किया जा सकता है ताकि पीढ़ी–दर–पीढ़ी उत्पादन में वृद्धि हो सके।

2. ऊँटों का मुख्य भोजन वृक्षों से मिलने वाली पत्तियाँ, चारागाह से मिलने वाले घास, जड़ी बूटियां इत्यादि होता है। वर्तमान में गाँव में गोचर भूमि के कम हो जाने व उस भूमि का सही ढंग से संरक्षण न होने के कारण अधिकतर ऊँटो द्वारा चाव से सेवन किये जाने वाले वृक्ष की पत्तियों की उपलब्धता कम होती जा रही है जिस कारण चारागाह विकास अति आवश्यक है।

3. कम संख्या में होने के कारण ऊँटों की बीमारिओं के बारे में चर्चा कम होती है। बीमार पशु की उत्पादन क्षमता, स्वस्थ पशु की तुलना में कम होता है। पशु पालकों के लिए उसे नजदीकी पशु स्वास्थ्य केंद्र में ले जाना कठिन होता है। ऐसे में इलाज समय पर न होने से उत्पादन कम तो होता ही है, स्वास्थ्य अधिक खराब होने पर पशु की मृत्यु भी हो सकती है। समिति के माध्यम से सरकारी संस्थाओं के अनुभवी पशु चिकित्सकों की सेवाएँ भी ली जा सकती है।

4. अन्य दुधारू पशुओं की दूध की मांग को देखते हुए दूध विपणन का कार्य प्राय: निजी संस्थाओं द्वारा ही किया जाता है, जिसके कारण विपणन कार्य ने अपनी ही एक दिशा बना ली है जिसमे पशु पालकों का जुड़ाव उसके उत्पादन, गाँव में उसके संग्रहण, शहर तक पहुँचाने की व्यवस्था, डेयरी में प्रौद्योगिकी व दूध से बने उत्पादों की बाजार में बिक्री की व्ययस्था करनी होती है। इस व्यवस्था को उष्ट्र दूध हेतु भी तैयार करने के लिए ऊँट पालकों को संगठित करने की आवश्यकता है।

5. समिति बना कर संगठित होने का मुख्य फायदा उत्पाद की बिक्री होने पर उससे होने वाले लाभ को सदस्यों में बाँटना है, ताकि सभी को उसका यथोचित लाभ मिले। उष्ट्र पालन में इसका महत्व बहुत अधिक है क्योंकि ऊँट पालकों की संख्या बहुत कम है। इनके संघटित होने से अधिक लाभ हो सकता है।

सहकारी समिति बनाने के लिए कम से कम 10 सदस्यों की आवश्यकता होती है। समिति के उदेश्य उष्ट्र पालन से जुड़े सभी पहलुओं व उससे जुड़े विपणन कार्य में सभी की साझेदारी के माध्यम से बांध कर रखने को प्रयास में सभी सदस्यों की भागीदारी रहती है। इसे प्रदेश व जिला स्तर पर पंजीकरण करवाया जा सकता है। समिति के कार्यो को पूरा करने के लिए पंजीकरण के पश्चात बैंकों व वित्तीय संस्थाओं से कर्ज भी लिया जा सकता है। अकेले जो कार्य नहीं किया जा सकता उसे संगठित हो कर करने से संगठन की क्षमता औरों के लिए उदाहरण बन जाती है।

जन जातीय उपयोजना के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा निष्पादित गतिविधियाँ

सुमन्त व्यास, राजेश कुमार सावल एवं एन.वी. पाटिल

जन जातिय उपयोजना (टी.एस.पी.) आदिवासी किसानों की आर्थिक स्थिति के उत्थान के लिए भारत सरकार द्वारा वित्त पोषित एक कार्यक्रम है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य जनजातीय क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे का विकास कर, आदिवासियों की आय में बढ़ोतरी करना है। इसके तहत केन्द्र द्वारा निम्नलिखित गतिविधियों का संचालन किया गयाः

(1) वर्ष 2011-2012

जन जातीय क्षेत्रों के लोगों हेतु भारत सरकार की नीतिगत योजना की अनुपालना हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा अपने अधीनस्थ संस्थानों को उनके कार्यक्षेत्र के अनुरूप यह उत्तरदायित्व सौंपा गया कि जन जातीय उपयोजना के माध्यम से जन जातीय बाहुल्य क्षेत्रों में रहने वाले उनकी स्थिति में अपेक्षित सुधार लाने हेतु प्राप्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों एवं जानकारी का संप्रेषण किया जाए। इसी के अन्तर्गत राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर ने वर्ष 2011-2012 में जन जातीय उपयोजना के अन्तर्गत राजस्थान के चिन्हित जन जातीय क्षेत्र में बांसवाड़ा व डूंगरपुर जिलों एवं जम्मू कश्मीर के लेह-लद्दाख क्षेत्रों में कृषि व पशुपालन से संबंधित तकनीकी जानकारियों के प्रसार हेतु माह फरवरी-मार्च 2012 में तीन चरणों में समस्त गतिविधियाँ सम्पन्न की गईं।

प्रथम चरण में 4 सदस्यीय वैज्ञानिकों एवं तकनीकी अधिकारियों की टीम ने 28 फरवरी से 1 मार्च, 2012 तक बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर जिले के गांवों-पचलासा, बड़ा, गटाड़ा, बरवासा माफी, बरवासा जागीर, गरही एवं उमराई (त्रिपुर सुन्दरी) के किसानों, स्थानीय पशु चिकित्सकों, पंचायत सदस्यों से सम्पर्क कर पशुपालन सम्बन्धित जानकारियों पर विचार-विमर्श किया। किसानों, महिलाओं तथा पशुपालन विभाग से जुड़े अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ सामूहिक चर्चा कर इस तरह के आगामी कार्यक्रम संयुक्त रूप से आयोजित करने संबंधी रूपरेखा तैयार की गई।

द्वितीय चरण में 19 से 21 मार्च को, बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर के ओडा, आसपुर, सुन्दरपुर व तलवाड़ा गांवों में स्थानीय आदिवासियों एवं पशुपालकों के साथ कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा की गई। स्थानीय किसानों ने व्याख्यानों, प्रदर्शनियों एवं प्रशिक्षणों के माध्यम से युवाओं और किसानों को जानकारी एवं प्रशिक्षण के लिए सहयोग हेतु निवेदन किया। इसके क्रियान्वयन हेतु पशु चिकित्सा अधिकारियों द्वारा ऐसे गांव चिन्हित किए गए जहां पर अधिकाधिक जनजातीय पशु पालक, शिविर का लाभ उठा सके। उप निदेशक, संयुक्त निदेशक, पशुपालन विभाग व स्थानीय चिकित्सकों के परामर्शानुसार बांसवाड़ा जिले के जोलाना गांव तथा डूंगरपुर जिले के

आसपुर तालुका के ढाणी खजूर गांव में किसान गोष्ठियों, स्वास्थ्य शिविर, प्रशिक्षणों, पोस्टर प्रदर्शनियों आदि द्वारा तकनीकी जानकारियाँ दी गई। दो दिवस तक संचालित किसान गोष्ठी (27-28 मार्च, 2012) के आयोजन में राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर, केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान गोधरा एवं आनन्द कृषि विश्वविद्यालय गुजरात के साथ-साथ कृषि एवं पशुपालन विभाग के विषय-विशेषज्ञों ने भाग लिया। पशुपालन से संबंधित विभिन्न पहलुओं जैसे बेहतर प्रबंधन, पोषण, ऊँटनी व बकरी के दूध का प्रसंस्करण, चारों का यूरिया उपचार, खनिज मिश्रण का महत्व, प्रजनन व जनन संबंधी देखभाल इत्यादि विषयों पर व्याख्यान दिया गया। किसानों एवं युवाओं को रोजगारोन्मुख करने के लिए दुग्ध उत्पादों के निर्माण, यूरिया द्वारा उपचार,यूरिया शीरा व खनिज ईटों के निर्माण पर प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए गए। कृषि, बागवानी एवं चारा उत्पादन व चरागाहों से संबंधित समस्याओं पर परस्पर वार्ता द्वारा समस्याओं का समाधान बताया गया। आसपुर ढाणी खजूर के करीब 700-800 जनजातीय समुदाय के लोगों ने उत्साहपूर्वक इनमें प्रतिभागिता निभाई तथा अपेक्षा जताई कि भविष्य में भी क्षेत्र के ऊँटों से जुड़ी समस्याओं के निस्तारण एवं पशुओं की संख्या में बढ़ोतरी हेतु केन्द्र द्वारा प्रयास किए जाएंगे।

सभी कार्यक्रमों के दौरान आयोजित पशु स्वास्थ्य शिविरों में लगभग 411 ऊँटों, गायों, भैंसों, भेड़ एवं बकरियों का उपचार किया गया। इच्छुक पशुपालकों एवं किसानों को लगभग 180 संतुलित सम्पूर्ण पशु आहार 'करभ' थैले (10 किलोग्राम) व खनिज मिश्रण के 181 पैकेट (1 किलोग्राम) वितरित किए गए व इसके उपयोग से पशु उत्पादन में वृद्धि हेतु लाभ बताए गए।

इस उपयोजना के अन्तर्गत जम्मू-कश्मीर में पाए जाने वाले दो कूबड़ वाले ऊँटों के लिए पोषण, स्वास्थ्य एवं जैव प्रौद्योगिकी के विषय-विशेषज्ञों की 4 सदस्यीय टीम ने दौरा किया। इस क्षेत्र से सम्बन्धित उष्ट्र पालकों के साथ विचार-विमर्श से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक वर्ष नवम्बर से फरवरी माह तक अत्यधिक बर्फबारी के कारण चरागाहों में चारे की कमी हो जाती है, इसलिए पशुओं के सामान्य स्वास्थ्य को बनाए रखने एवं उनका स्थानांतरण रोकने के लिए पूरक आहार खिलाने की आवश्यकता होती है। इसी क्रम में केन्द्र द्वारा विकसित संपूर्ण पूरक आहार 'करभ' ऊँटों को खिलाया गया जिसकी अच्छी स्वीकार्यता देखी गई। राज्य के पशुपालन अधिकारियों एवं डी.आई.एच.ए.आर (डिफेंस इन्स्टीट्यूट ऑफ हाई एल्टीट्यूड रिसर्च) के वैज्ञानिकों के साथ चर्चा में दो कूबड़ ऊँट की अनुकूलनीयता, अद्वितीय प्रतिरक्षा प्रणाली एवं पोषणीय सुरक्षा से संबंधित अध्ययन हेतु संयुक्त परियोजना की आवश्यकता पर जोर दिया गया। केन्द्र का इस लेह लद्दाख क्षेत्र के दौरा का मूल उद्देश्य वहां के ऊँटों के रखरखाव, स्वास्थ्य सुधार, प्रजनन, संख्या में बढ़ोत्तरी एवं अन्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करवाना रहा।

(2) वर्ष 2013-14

वर्ष 2013-14 में जनजातीय उपयोजना के अन्तर्गत प्रतापगढ़ व उदयपुर जिलों में 17 से 20 फरवरी 2014 तक शिविर का आयोजन किया गया जिसमें 127 महिलाओं सहित कुल 480 ग्रामीणों ने अपने पशुधन (482 ऊँट, 672 भैंसे, 708 गायें, 970 बकरियां व 308 भेड़ें) सहित अपनी भागीदारी निभाई। शिविर क दौरान पशुपालकों को प्रसार सामग्री व दवाइयों का वितरण किया गया। गायों व व भैंस से दूध दूहने की प्रतियोगिता व श्रेष्ठ उष्ट्र प्रतियोगिता का आयोजन कर विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कार वितरण किया गया। किसान गोष्ठी तथा पशुपालन से सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम, केन्द्र के वैज्ञानिकों, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारियों ने राजस्थान सरकार के पशुपालन विभाग के अधिकारियों की चल इकाई के सहयोग से सम्पूर्ण गतिविधियाँ आयोजित की।

(3) वर्ष 2014-15

इसी उपयोजना के तहत वर्ष 2014-15 में भी केन्द्र ने विभिन्न सार्थक गतिविधियाँ आयोजित की गई। इसके तहत दिनांक 21-23 सितम्बर, 2014 में जन्मू-कश्मीर तथा राजस्थान में वैज्ञानिकों ने दौरा किया। दो कूबडीय ऊँटों हेतु स्वास्थ्य केन्द्र लगाया गया। जन जातीय लोगों को आजीविका में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से केन्द्र के वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों एवं सहायक कार्मिकों के एक दल ने दिनांक 22.03.2015 को झाडोल तहसील, जिला उदयपुर में पशुपालन सम्बन्धी कार्यक्रमों का आयोजन किया। इन कार्यक्रमों में गांव आडोल के पशु पालन से जुड़े (यथा दूध हेतु स्थानीय एवं संकर नस्ल गाय, भैंसे, भेड़ एवं बकरी को मांस, ऊन तथा दूध तथा ऊँट को बोझा ढोने एवं ऊँटनी को दूध हेतु पालने वाले) लोगों ने भाग लिया। जन जातीय समुदाय के 32 परिवारों ने पशुधन यथा- 26 ऊँटों, 296 बकरियों, 200 भेड़ों एवं 47 गायों के साथ, आधुनिक पशु पालन पद्धतियों यथा डेयरी प्रसंस्करण एवं वर्षभर चारा उत्पादन में रूचि रखने वाले प्रबुद्ध लोगों तथा गांव के सरपंच की इसमें सहभागिता रहीं।

इसी क्रम में दिनांक 23 मार्च, 2015 को आयोजित कार्यक्रम में पशुओं में कम दुग्ध-उत्पादन व धीमी शारीरिक वृद्धि के कारणों एवं उनमें विद्यमान बीमारियों की जाँच की गई। बैठक में स्थानीय जर्मप्लाज्म/नस्ल संवर्धन हेतु संकर नस्ल की गायों की महत्ता, चरने वाले पशुओं की बेहतर देखभाल एवं उत्पादकता हेतु पोषकीय अनुपूरकता की आवश्यकता, विशेषकर सूखे मौसम के दौरान उनमें आई कमी में खनिज के अनुपूरण की जानकारी उपलब्ध करवाई गई।

सभी प्रकार के पशुओं से जुड़ी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं हेतु स्वास्थ्य शिविर भी लगाया गया जिसमें विभिन्न जैविकीय नमूनें (रक्त, मल, एवं बाल) लिए गए तथा रोगग्रस्त पशुओं का इलाज किया गया। सहभागी परिवारों में श्रेष्ठ जानवर प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिनमें कुल 6

प्रतियोगिताएं रखी गई। बेहतर पशुधन प्रबन्धन पद्धतियों को प्रोत्साहित करने हेतु प्रत्येक श्रेणी में प्रथम तीन प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किया गया तथा अन्य को सांत्वना पुरस्कार दिया गया। सभी प्रतिभागियों से लाभकारी डेयरी, बकरी पालन एवं पोषकीय प्रबन्धन के विविध पहलुओं पर राय मांगी गई एवं उनकी समस्याओं के समाधान सुझाए गए। गांव के सरपंच ने ग्रामीणों के विकास से जुडी संस्थाओ जैसे पंचायत समितियों, ग्रामीण बैंक एवं पशुपालन विभाग द्वारा जन जातीय लोगों हेतु उपलब्ध विविध योजनाओं संबंधी जानकारी प्राप्त करने पर जोर दिया। किसानों को आधुनिक पशुपालन पद्धतियों एवं ऊँटनी के दूध से निर्मित मूल्य संवर्धित उत्पादों के संबंध में प्रशिक्षण भी दिया गया।

जन जातीय उपयोजना के कार्यक्रम में दो कूबड़ ऊँटों की स्थिति के सर्वेक्षण, स्वास्थ्य, पोषण एवं प्रजनन संबंधी समस्याओं तथा ग्रामीणों को उष्ट्र पालन हेतु प्रोत्साहित करने के प्रयोजनार्थ लद्दाख के लेह एवं नुब्रा घाटी में 9-12 मार्च, 2015 के दौरान स्वास्थ्य एवं प्रसार शिविरों तथा किसान गोष्ठियों का आयोजन किया गया। उष्ट्र फार्म, छछूत, लेह में आयोजित स्वास्थ एवं प्रसार शिविर में टीम सदस्यों द्वारा इस दौरे के दिनांक तथा अवधि 18 ऊँटों का परीक्षण किया गया, रक्त एवं मल के नमूनें लिए गए तथा बीमार जानवरों का इलाज किया गया। उष्ट्र व्यवसाय से जुड़े विभिन्न समस्याओं पर चर्चा की गई एवं उपयुक्त समाधान सुझाया गया। नुब्रा घाटी के डिसकिट, हुन्डर, सुमूर एवं तिगर गांवों में दो कूबडीय ऊँटों की स्थिति का सर्वेक्षण तथा उनके स्वास्थ्य स्तर एवं पालन संबंधी समस्याओं का अवलोकन किया गया। गांव हुन्डर (शियोग नदी के किनारे बसा गांव) में दो, डिसकिट व सुमूर में एक-एक, प्रसार एवं स्वास्थ्य शिविर आयोजित किए गए जिनमें बीमार पशुओं का इलाज किया गया तथा दो कूबड़ीय ऊँटों के स्वास्थ की देखभाल तथा पोषकीय प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई। प्रयोगशाला विश्लेषण हेतु रक्त, मल, चारा एवं दाना के नूमनें एकत्रित किए गए। जीवमिति विश्लेषण किया गया तथा उनके चारा एवं दाना के संसाधनों का मूल्यांकन किया गया। ब्रीडिंग सीजन से पूर्व सहयोगी संसर्गता (असिस्टेड मैटिंग) का सफलतापूर्वक प्रयास किया गया तथा संसर्ग हेतु नर एवं मादा के चयन सम्बंधित सलाह प्रदान की गई जिसके अन्तर्गत अन्त:प्रजनन को रोककर दूरस्थ नर व मादा दो कूबड़ीय ऊँटों से बच्चें पैदा किया जा सकें।

लेह लद्दाख के इसी दौरे के अन्तर्गत चार किसान गोष्ठियाँ (हुन्डर गांव में दो, डिसकिट तथा सुमूर में एक-एक) भी आयोजित की गई जिनमें ऊँट पालकों से जुड़ी समस्याओं, उष्ट्र पालन की उपयोगिता एवं उससे आय सृजन संबंधी पहलुओं पर चर्चा के संबद्ध में स्थानीय लोग शामिल हुए। उष्ट्र की कुल संख्या, ऊँट पालन व्यवसाय से आमदनी एवं भार ढोने तथा पर्यटन गतिविधियों संबंधी आंकड़े संग्रहित किए गए। किसानों की जरूरतों के अनुसार खनिज लवण मिश्रण, कृमिनाशक दवाएं, त्वचा-मलहम, आंखों की दवा इत्यादि वितरित की गई। संस्थान की विविध गतिविधियां एवं उपलब्ध

सुविधाओं से किसानो कों अवगत करवाया गया। किसानों ने संस्थान में आकर अधिक जानकारी/प्रशिक्षण लेने की इच्छा जाहिर की।

(3) वर्ष 2015-16

जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत गुजरात दौरों के अंतर्गत केन्द्र को पता चला है कि वहां ऊँटनी के दूध व्यवसाय की प्रबल संभावनाएं छिपी है। गुजरात के कच्छ में ही एक 'कच्छ ऊँट उछेरक मालधारी संगठन' है जो कि एक 'सहजीवन' गैर सरकारी संगठन है तथा यह ऊँट पालकों से दूध संग्रहण का कार्य करता है। यह ऊँट पालकों को उष्ट्र दूध की महत्ता समझाते हुए उनमें जागरूकता तथा आर्थिक सुधार लाना चाहता है। केन्द्र ने पाया है कि ऊँटनी के दूध को व्यवसाय के रूप में स्थापित करने की इससे संभावना बढ़ी।

भा.अनु.प.-राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर ने जन जातीय उपयोजना (टी.एस.पी.) के तहत गुजरात के ग्राम लक्ष्मीपुरा, तहसील खेडब्रह्मा में दिनांक 28 जनवरी, 2016 को ऊँट स्वास्थ्य शिविर एवं किसान गोष्ठी आयोजन किया। यहां आयोजित कार्यक्रम में 110 ऊँटों का स्वास्थ्य परीक्षण व उपचार किया गया। साथ ही जन जातीय पशु पालकों को प्रोत्साहित करने हेतु श्रेष्ठ नर व मादा ऊँट एवं दुग्ध उत्पादन प्रतियोगिताएं आयोजित की गई जिनमें पशुपालकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। केन्द्र के निदेशक डॉ. एन.वी.पाटिल सहित अन्य वैज्ञानिकों ने पशुओं से जुड़ी विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं व सावधानियों के बारे में किसानों को जानकारी दीं और उनके पशुओं संबंधी समस्याओं के निराकरण के उपाय बताए। केन्द्र के इस दल ने उन्हें वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा अपने पशु से श्रेष्ठ उत्पादन प्राप्त करने संबंधी जानकारी दी जिससे वे पशुपालन के माध्यम से अधिकाधिक मुनाफा कमा सके। टी.एस.पी. के इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम के आयोजन में केन्द्र सहित कामधेनु विश्वविद्यालय, गुजरात के संयुक्त निदेशक (अनुसंधान) एवं गुजरात पशुपालन विभाग के अधिकारियों ने भी सक्रिय भूमिका निभाई।

जन जातीय उपयोजना के तहत ही एक अन्य कार्यक्रम का आयोजन ग्राम तेलपुर तहसील पिण्डवाड़ा जिला सिरोही (राजस्थान) में दिनांक 29 जनवरी, 2016 को किया गया। इसके तहत ऊँट स्वास्थ्य परीक्षण, किसान गोष्ठी एवं दुग्ध उत्पादन प्रतियोगिताएं आयोजित की गई जिनमें ग्राम तेलपुर एवं डींगार के 23 ऊँट पालकों के करीब 320 ऊँट सहभागी रहे। एन.आर.सी.सी. वैज्ञानिकों ने इन ऊँटों की स्वास्थ्य जांच करने के उपरांत सर्रा एवं खुजली रोग के उपचार व बचाव के टीके लगाए। जन जातीय क्षेत्र के ऊँट पालकों को प्रोत्साहित करने हेतु श्रेष्ठ नर ऊँट व ऊँटनी तथा ऊँटनी से दूध उत्पादन प्रतियोगिताएं आयोजित की गई जिनमें पशु पालकों की उत्साहपूर्वक भागीदारी देखी गई। ऊँट पालकों के साथ गोष्ठी के दरम्यिान ही ऊँट के दूध की गुणवत्ता के बारे में चर्चा व दुग्ध संग्रहण एवं

विपणन पर मंथन किया गया। एन.आर.सी.सी. के वैज्ञानिकों ने यहां के पशु पालकों का ऊँटनी के दूध–विक्रय व्यवसाय से जुड़े होने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्हें ऊँटनी के दूध में पाए जाने वाले औषधीय गुणधर्मो के बारे में विस्तृत जानकारी दीं। वैज्ञानिकों ने बताया कि विदेशों में ऊँटनी का दूध काफी ऊंचे दामों पर बेचा जाता है। अत: इसका विपणन राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने से भविष्य में उन्हें अच्छा लाभ मिलेगा। साथ ही इस बात की जानकारी दी कि ऊँटनी के दूध की कीमत, उसमें पाई जाने वाली वसा के आधार पर तय नहीं की जाए क्योंकि इसमें कई स्वास्थ्य वर्धक गुण पाए जाते हैं, इसी कारण यह दूध अधिक महत्व का है। जन जातीय उप योजना के तहत केन्द्र के इस कार्यक्रम को सफल बनाने में एन.आर.सी.सी. बीकानेर के निदेशक डॉ. एन.वी.पाटिल सहित वैज्ञानिकों, पशुपालन विभाग तथा गैर सरकारी संस्था पीपुल्स फॉर एनिमल (पी.एफ.ए.) के कार्यकर्ताओं सहित वहां के पशुपालन विभाग के कर्मचारियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा।

केन्द्र ने इन क्षेत्रों के जन जातीय लोगों से उष्ट्र पालन पद्धति व इस व्यवसाय की स्थिति का भी पता किया जिसमें यह सामने आया है कि यहां मुख्यत: उष्ट्र टोले को दिनभर जंगलों में चराते हैं तथा प्रतिदिन 25–40 किलोमीटर तक विचरण कर अपना भरणपोषण कर लेते हैं। इन लोगों की आय का मुख्य साधन ऊँटनी का दूध ही है जिसे वे जोधपुर–सिरोही–अहमदाबाद हाइवे होटलों में बेचते हैं। परंतु इनके साथ दूध की बिक्री को लेकर एक समस्या यह है कि इसके दूध का बाजार भाव उतना प्राप्त नहीं होता जितनी इसमें विद्यमान औषधीय गुणों के आधार पर होना चाहिए। केन्द्र को इन दौरों से यह पता चला है, इनकी ऊँटनियों का चयन दूध के आधार पर ही किया जाता है तभी इस क्षेत्र में दूध व्यवसाय को पनपता पाया।परंतु वसा आधार दूध की बिक्री के कारण भी ऊँटनी का दूध गाय व भैंस के दूध की अपेक्षा कम मूल्य प्राप्त होता है। ऐसी कई समस्याओं, नियमों, संगठन व विपणन व्यवस्था के संबंध में केन्द्र से सहयोग तथा सुझाव मांगे गए हैं।

केन्द्र ने पिण्डवाड़ा (सिरोही) में भी दुग्ध व इसके व्यवसाय की स्थिति का भी पता किया। यहां मधुमेह के उपचार हेतु ऊँटनी का दूध प्रयोग में लाया जा रहा है परंतु इनकी संख्या बहुत सीमित है। केन्द्र ने इस क्षेत्र में ऊँटनी के दूध को बढ़ावा देने के लिए इसे एक व्यवसाय के रूप में अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया। केन्द्र ने जन जातीय क्षेत्रों के दौरान ही कुछ गांवों पर भी अध्ययन कर पाया कि लगभग 700–800 ऊँट तैलपुर तथा और क्षेत्र में भी है, इनमें से हर एक ऊँटनी अपने बच्चे को दूध पिलाने के बाद भी 6–8 लीटर दूध प्रतिदिन उत्पादित करती है। केन्द्र ने ऊँटनी के दूध को अच्छी खासी मात्रा में एकत्र करके इसके विपणन करने तथा केन्द्र द्वारा इसके दूध से विकसित उत्पाद का संगठित स्वरूप में प्रशिक्षण लेने हेतु प्रोत्साहित किया जिसमें इन दुग्ध उत्पादों के निर्माण की विधियों, प्रसंस्करण, पैकिंग आदि का तकनीकी प्रशिक्षण, इन उत्पादों की बड़े शहरों में बिक्री/व्यवसाय को पुख्ता कर सकता है।

लेखक परिचय

डॉ.एन.वी.पाटिल
निदेशक,
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ. राजेश कुमार सावल
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.एस. के. घोरुई
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.सुमंत व्यास
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.राघवेन्द्र सिंह
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.शरत् चन्द्र मेहता
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.अशोक कुमार नागपाल
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.फतेह चन्द टुटेजा
प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.राकेश रंजन
वरिष्ठ वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.संजय कुमार
वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.शिरीष डी. नारनवरे
वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.देवेन्द्र कुमार
वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.मुहम्मद मतीन अंसारी
वैज्ञानिक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.काशी नाथ
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

श्री नेमीचंद बारासा
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

श्री मंजीत सिंह
तकनीकी अधिकारी
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.राकेश कुमार पूनियां
वरिष्ठ तकनीकी सहायक
भाकृअनुप –राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ. गोपाल दास
प्रधान वैज्ञानिक
केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान मखदूम,
फरह–281122, मथुरा, उ. प्र.

डॉ.तिरुमला राव ताल्लुरी
वैज्ञानिक
अश्व उत्पादन परिसर
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334001 (राजस्थान)

डॉ.संजय कुमार रवि
वैज्ञानिक
अश्व उत्पादन परिसर
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334001 (राजस्थान)

डॉ. नितिका शर्मा
वैज्ञानिक
केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान
मखदूम, फरह–281122, मथुरा, उ. प्र.

डॉ. अनिल कुमार मिश्रा
वैज्ञानिक
केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान मखदूम,
फरह–281122, मथुरा, उ. प्र.

डॉ.राम अवतार लेघा
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभागाध्यक्ष
अश्व उत्पादन परिसर
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र,
बीकानेर–334001 (राजस्थान)

डॉ. आशीष श्रीवास्तव
सहायक आचार्य
औशधि विज्ञान विभाग,उ. प्र. पं. दी. द. उ.
पशुचिकित्सा विज्ञान वि. वि. एवं गो
अनुसंघान संस्थान, मथुरा

डॉ.अमिता रंजन
सहायक आचार्य
पशु भेषज एवं विष विज्ञान विभाग
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय
राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ.शीला चौधरी
आचार्य
स्नात्कोत्तर पशुचिकित्सा शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान (पी.जी.आई.वी.आर.), जयपुर
राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

डॉ. दिलीप कुमार समादिया
प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी विज्ञान)
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)
e-mail: samadiadk@yahoo.com

डॉ. राज नारायण
प्रधान वैज्ञानिक
पक्षी आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग
केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान
इजतनगर, बरेली (उ. प्र.) –243122

डॉ. विशेष कुमार सक्सेना
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभागाध्यक्ष
पक्षी आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग,
केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान
इजतनगर, बरेली (उ. प्र.) –243122

डॉ. चन्द्रहास
वरिष्ठ वैज्ञानिक
पक्षी आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग
केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान
इजतनगर, बरेली (उ. प्र.) –243122

डॉ.सुषमा विज
संयुक्त निदेशक
पशुपालन विभाग, बीकानेर

डॉ.विरेन्द्र नेत्रा
उप निदेशक
पशुपालन विभाग, बीकानेर

डॉ.जे.पी. कछावा
सहायक आचार्य
पशु औषधी विभाग
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय
राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

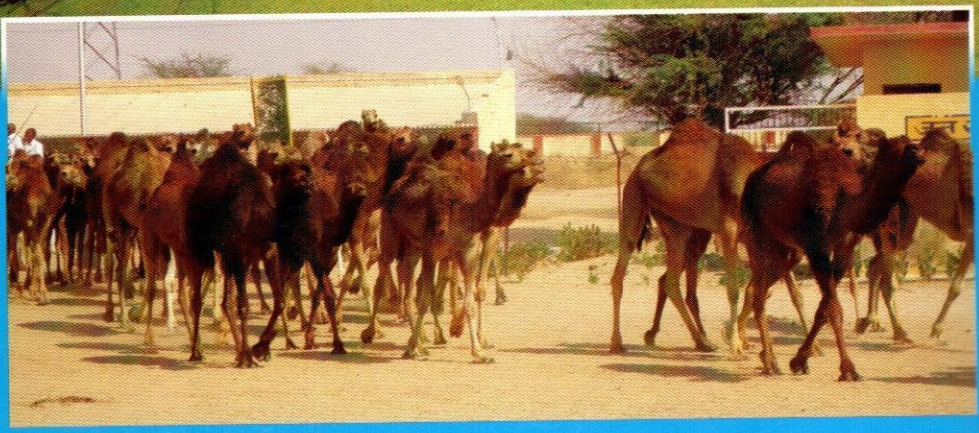

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch